राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक, पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि
(सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर)

ग्रन्थांक 5

श्रीमन्महाराजाधिराज–जयसिंहदेव–कारिता

यन्त्रराजरचना

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर (राजस्थान)

2009

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान संपादक–पुरातत्त्वाचार्य, जिनविजय मुनि
{सम्मान्य संचालक, राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर}

ग्रन्थांक 5

श्रीमन्महाराजाधिराज–जयसिंहदेव–कारिता

य न्त्र रा ज र च ना

{ वेधक्रिया समन्विता }

संपादक
पं. केदारनाथ ज्योतिर्विद्
{राज्यज्योतिषी, जयपुर, राजस्थान}

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर (राजस्थान)

प्रथमावृत्ति वि. 2010 — 1953 ई.
द्वितीयावृत्ति वि. 2066 — मूल्य–30 रुपये — 2009 ई.

निदेशकीय

विभाग की पुरातन ग्रन्थमाला में प्रकाशन करने के लिए प्रथम वर्ष में 5 ग्रन्थों के सम्पादन व प्रकाशन का निर्णय लिया गया था, उनमें (यन्त्र–राज रचना) छोटा–सा ग्रन्थ भी शामिल था। यन्त्रराज रचना स्वयं महाराजा जयसिंह की रचना है ऐसी प्रसिद्धि है। सवाई जयसिंह ज्योतिष विद्या के बड़े प्रेमी थे, उनके द्वारा निर्मित करवाई गई वेधशालाएं इसका साक्षात् प्रमाण है। इस कृति में वेधशालाओं में बनवाए जाने वाले यंत्रों के विषय में लिखा गया है। ग्रन्थांक 5 के रूप में प्रकाशित इस कृति का सम्पादन पं. श्री केदार नाथ ज्योतिर्विद ने किया है जो अपने विषय के मर्मज्ञ एवं सम्पूर्ण भारत में प्रमाणभूत पंडित थे।

यंत्र–राज रचना का पुनर्मुद्रण करवाकर विदद्वजन के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है। पूर्व संस्करण की भांति प्रस्तुत संस्करण भी विद्वानों के लिए उपादेय हो समादृत हो सकेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

वन्दना सिंघवी
आर.ए.एस.
निदेशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर

किंचित् प्रास्ताविक

*

'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला' में प्रकाशित करनेके लिये, प्रथम वर्ष (सन् १९५०) में जिन ५ ग्रन्थोंके संपादन एवं प्रकाशनका कार्य प्रारंभ किया गया था, उनमेंका यह प्रस्तुत **यंत्रराजरचना** नामक छोटासा प्रकरण भी है जो पाठकोंके हाथमें उपस्थित है। इस निबन्ध की रचना, राजस्थानकी विद्यमान राजधानी और राजस्थानकी सबसे अधिक सुन्दर नगरी—ज य पु र के बसानेवाले महाराजाधिराज सवाई जयसिंहजीने की है या करवाई है। महाराजा सवाई जयसिंहजी ज्योतिष विद्याके बडे प्रेमी और अभ्यासी नृपति थे। उनकी बनवाई हुई वेधशालायें उनके इस विषयके प्रेम और ज्ञानकी साक्षी दे रही हैं। प्रस्तुत प्रकरण, इन्हीं वेधशालाओंमें बनवाये जानेवाले यंत्रोंकी रचनाके लिये लिखा गया है। इसका विषय ज्योतिष शास्त्रके साथ संबन्ध रखनेवाला होनेसे प्रायः पारिभाषिक स्वरूपका है। ग्रन्थका संपादन, हमारे स्नेहास्पद विद्वान् मित्र पं. श्री केदारनाथजी ज्योतिर्विद्ने किया है जो अपने विषयके अच्छे ज्ञाता और भारतवर्षमें एक प्रमाणभूत पण्डित हैं। पं. केदारनाथजी प्राचीन ग्रन्थोंके संपादनके अच्छे अभ्यासी हैं। ये उन म. म. पं. दुर्गाप्रसादजीके सुपुत्र हैं जिन्होंने बंबईके प्रख्यात निर्णयसागर प्रेस द्वारा प्रकाशित, 'काव्यमाला' नामक ग्रन्थमालामें अनेकानेक संस्कृत ग्रन्थोंका संपादन कर, संस्कृत वाङ्मयकी बडी सेवा की थी। इन्हींके तत्त्वावधानमें, जयपुर और दिल्लीकी वेधशालाओंका जीर्णोद्धार कार्य संपन्न हुआ है।

प्रस्तुत प्रकरणके विषयमें जो कुछ विशेष ज्ञातव्य वस्तु है उसका दिग्दर्शन पण्डितजीने अपनी प्रास्ताविक भूमिकामें करा दिया है।

महाराजा सवाई जयसिंहजीने ज्योतिष विषयके कई ग्रन्थोंकी विशिष्ट रचनाएं की—करवाई हैं जो जयपुरके पोथीखानेमें विद्यमान होनी चाहिये। यह **पोथीखाना** अब जयपुरके महाराज एवं राजस्थानके राजप्रमुखकी निजी संपत्तिरूप कहा जाता है। हम श्रीमान् राजप्रमुखसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे अपनी इस राष्ट्रीय अमूल्य ज्ञानसंपत्तिको, इस प्रकार राष्ट्रके सम्मुख रख दें, जिससे विद्वान् जन इसका यथेष्ट उपयोग और उपभोग कर सकें। अन्यथा दीमक और चूहोंका भक्ष्य बन कर यह निधि यों ही नष्ट हो जायगी।

राजस्थान सरकारने, राजस्थानके भिन्नभिन्न स्थानोंमें बिखरी हुई और नष्टभ्रष्ट होती हुई इस प्रकारकी साहित्यिक संपत्तिका संरक्षण और संशोधन करनेकी दृष्टिसे इस **राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर** की स्थापना की है और इसके द्वारा, यथासाधन कार्य प्रारंभ किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप, सवाई महाराजा जयसिंहजीकी यह एक रचना आज प्रकाशित हो रही है। यदि श्रीमान् राजप्रमुखने इस विषयमें उत्साह और औदार्य दिखलाया तो उक्त महाराजाकी अन्यान्य रचनाएं भी प्रकाशमें लानेका प्रयत्न किया जायगा।

सर्वोदय साधना आश्रम
चंदेरीया (मेवाड)
ता. ११-४-५३

—जिनविजय मुनि

प्रास्ताविक भूमिका ।



प्राचीन कालसे कालगणनाके संबन्धमें अनेक प्रकार और अनेक यन्त्र पाये जाते हैं। साधारण रूपसे छाया यन्त्रोंका सबसे प्रथम आविष्कार हुआ। उनमें शङ्कु नामका यन्त्र जो नर, ना, इत्यादि नामोंसे भी ज्यौतिष- ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है काममें लाया जाता है। पृथ्वी पर सूर्यके प्रकाशमें मनुष्य देहकी छाया प्रातः कालमें जितनी लम्बाईकी होती है वही छाया सूर्यके धीरे धीरे ऊंचा आने पर क्रमसे छोटी होने लगती है। और ठीक मध्याह्नमें बिलकुल छोटी हो जाती है। इस अपनी छाया परसे कितना काल सूर्योदय होने पर व्यतीत हो गया, इसका प्रकार सबसे प्रथम आविष्कृत हुआ। अपनी छायासे कालज्ञान का प्रकार आविष्कृत होने पर उसके ही आधार पर १२ अंगुलका सूचीमुख शङ्कु रख कर उसकी छाया से प्रत्येक ऋतुमें ठीक समय के जाननेका प्रकार जाना गया जो अबतक प्रचलित है। वह प्रकार यह है—

परद्युमानं दिनमानवर्जितं नगघ्नमक्षाप्तमहस्तु मध्यभा।
द्युमध्यभो ना दशयुङ्निजेष्टभा शराहताहर्मितिमुद्धरेत् तया॥
क्रमान्मता पूर्वपरा द्युखण्डयो-र्द्वयोरवाप्ता गतगम्यनाडिका।

अर्थ — जिस स्थान पर शङ्कुकी छायासे अभीष्ट दिन और अभीष्ट समयमें कालकी गणना करनी हो, वहांके सबसे बडे दिनमानकी घटी-पलात्मक संख्याको लिख कर उसमेंसे अभीष्ट दिनमें उस दिनके दिनमानको घटा देना चाहिये और उस संख्याको ७ से गुणा कर, ५ का भाग दे, जो लब्धि आवै वह उस दिनकी मध्याह्न समयकी छायाका मान होता है।

फिर जिस समयका काल जानना हो उस समय समतल भूमिमें १२ अंगुलका शङ्कु रखकर, चाहे वह शङ्कु १२ हाथका या इससे छोटा बडा हो उसको १२ अंगुल मान कर, उसकी छायाको अङ्गुल व्यङ्गुल संख्यामें नाप कर अभीष्ट समयकी छाया जान लेवै और उस छायामें १० जोड कर इस योगसंख्यामें से उस दिनकी पहले लायी हुई मध्याह्न च्छायाको घटा देवै, जो शेष बचे वह भाजक संख्या होती है। इष्ट दिनके दिनमानमें जो घटी-पलात्मक होता है उसको ५ से गुणा कर इस भाजक संख्याका भाग देवै, जो लब्धि आवै वह ही उस समयका काल होता है। यह काल मध्याह्नसे पहले सूर्योदयके पीछे कितना समय हो चुका है वह आता है। यदि मध्याह्न पीछे कालज्ञान किया हो, तो वह लब्धिफल सूर्यास्तमें कितना समय शेष रहा है वह आ जाता है। इस प्रकार किसी भी समय कालज्ञान किया जा सकता है। इस प्रकारको यदि अच्छे प्रकार सूक्ष्मतासे काममें लाया जाय तो सूक्ष्मतासे कालज्ञान हो सकता है।

छायायन्त्रोंमेंसे वर्तमान कालमें प्रचलित धूपघडीका उपयोग बहुत प्रचारमें आ गया है। यह धूपघडी पलभा यन्त्रके नामसे प्रसिद्ध है। इस यन्त्रके बनानेमें, जिस स्थान पर यह धूपघडी बनाना अपेक्षित हो, वहांकी पलभा अथवा अक्षांश जानना परमावश्यक होता है। प्राचीन ज्योतिषी लोग जिस दिन सूर्य विषुव वृत्त अर्थात् भूमध्य रेखाकी सीधमें आता है उस दिन मध्याह्न समयकी १२ अंगुलके शङ्कुकी छायाको नाप कर रखते थे और उस परसे ही

अभीष्ट नगर वा ग्रामका अक्षांश दिनमान आदि जान लेते थे । प्रसङ्गागत यहां धूपघडी बनाने का प्रकार और उसका उपयोग भी लिखना अप्रासङ्गिक नहीं होगा । वह यह है—

जिस स्थान पर जितनी बडी धूपघडी बनाना हो उसही परिमाणका एक वृत्त पहिले बडे कागज पर परकालसे खींच लेना चाहिये । और उस वृत्त पर केन्द्रमें जाने वालीं समकोण बनाती हुई दो व्यास रेखाएं खींच लें । और वृत्तके एक चतुर्थांशमें ९० अंश मान कर ऊपरसे नीचे आने वाली व्यास रेखासे वृत्तके केन्द्रमें ड्रॉइङ्ग बॉक्सके साथ मिलने वाले वृत्तार्धको सही सच्चा रख कर इष्टदेशके अक्षांशोंको, जो आज कल भूगोलके नक्शोंमें सूक्ष्म दिये रहते हैं, जान कर गणना कर एक चिह्न कर देवै । और वृत्तके केन्द्रसे उस चिह्न पर जाती हुई एक रेखा वृत्तपरिधि तक खींचे । इस ही प्रकार उर्ध्वाधर व्यास रेखाके दूसरी तरफ भी अक्षांश चिह्न अङ्कित कर उस चिह्न पर जाती हुई एक रेखावृत्तकी परिधि तक खींच दे । और वृत्तपरिधि पर इन दोनों अक्षांश चिह्नोंको अङ्कित कर एक आडी और सीधी रेखासे मिला देवे । और उस रेखाके अर्ध परिमाणको, जो वृत्त-परिधिके अक्षांश चिह्नसे ऊर्ध्वाधर व्यासरेखा तक होगा, परकालसे नाप लेवे । यह परिमाण इष्ट नगरके अक्षांशोंके अनुसार अक्षज्या होगी । इस अक्षज्याके परिमाणको व्यासार्ध मान कर पहले बनाये हुए अभीष्ट वृत्तसे स्पर्श करता हुआ (अर्थात् न एक बाल दूर रहे और न उस वृत्त को काटे) ऐसा छोटा वृत्त और बनावे । और इस वृत्त पर भी समकोण बनाती हुई ऊर्ध्वाधर तथा तिर्यक् दो व्यासरेखाएं बना लेवे । और साथ ही इन दोनों बडे छोटे वृत्तोंके बीचसे जाती हुई एक स्पर्शरेखा खींच देवे । और इस अक्षज्यावृत्त के एक चतुर्थांशको जो बडे वृत्तकी तरफका हो उसको समान ६ भागोंमें वृत्तार्धके द्वारा बांट कर छोटे वृत्त पर ६ चिह्न बना देवे । और छोटे अक्षज्यावृत्तके इन छहों चिह्नों पर होती हुई छोटे वृत्तके केन्द्रसे छह रेखायें, छोटे बडे वृत्तोंके मध्यमें की हुई उस बडी स्पर्शरेखा तक, पृथक् खींच देवे । ऐसा करने पर स्पर्शरेखा पर छह चिह्न बन जावेंगे । इन छहों चिह्नों तक बडे वृत्तके केन्द्रसे छह रेखायें बना लेवै । ये छह रेखायें छह घण्टों की छायारेखा हो जावेंगीं । यदि धूपघडीमें सूक्ष्मता लाना हो तो छह चिह्नोंके स्थान पर १२ चिह्न आधे आधे घण्टेके या २४ चिह्न १५ — १५ मिनटके या इससे भी अधिक चिह्न जो एक घण्टेके परिमाणमें १५ अंश के अनुपातसे होंगें बना लेवै । ये छायारेखायें धूपघडी पर सूक्ष्मसे सूक्ष्म बनाई जा सकती हैं । चाहे इस प्रकारसे एक एक मिनटकी धूपघडी बना ली जावे । इस प्रकार छायारेखायें बना लेने पर बडे वृत्त पर जो अक्षांश चिह्न बनाया गया है उस चिह्न पर होती हुई एक बडे वृत्तके केन्द्रसे सीधी रेखा खींचे, वह रेखा दोनों वृत्तोंके बीचसे जाती हुई स्पर्शरेखा तक खींचे । और जहां उस रेखा पर यह अक्षांश चिह्न पर जाने वाली रेखा संपात करे वहां एक चिह्न कर देवै और ऊर्ध्वाधर व्यासरे-खाका वृत्तपरिधि पर जहां संयोग है वहां तक इस परिमाणको नाप लेवै । यही इस धूपघडीके पीतलके शङ्कुकी उंचाई होगी । और बडे अभीष्टवृत्तकी व्यासार्ध रेखाका परिमाण जो वृत्तकेन्द्रसे उभय वृत्तोंकी स्पर्शरेखा तक होगा वह शङ्कुकी लम्बाई और बडे वृत्तके केन्द्रसे अक्षांश चिह्न पर जाने वाली रेखा जिस चिह्न पर उभय वृत्तोंकी स्पर्शरेखासे योग करै वहां तकके परिमाणकी शङ्कुकी तिरछी (कर्ण) रेखाकी नाप होगी । इस प्रकार धूपघडीके शङ्कुका परिमाण होगा ।

इस नापका पीतलका शङ्कु इस धूपघडी पर उत्तर दक्षिण लगा देने पर, और धूपघडीको सही उत्तर दक्षिण रेखा पर समतल भूमिमें स्थापित कर देने पर, यह अभीष्ट देशमें, सूर्यसे समय (स्थानिक) बताने वाली धूपघडी बन जावेगी। इस धूपघडीका अब प्रचार है और इससे सही सच्चा समय ज्ञात हो जाता है। ये धूपघडियां क्षितिजके सम धरातल पर बनाई और रक्खी जाती हैं। यदि खडी दीवारके आकार में या वृत्तरूपमें बनाई जाय तो अनेक प्रकारोंसे बनाई जा सकती हैं। किंतु इन सब, छायासे समय बतानेवाले उपायोंका उपयोग, सूर्यके आधार पर होनेसे केवल दिनमें ही हो सकता है। और दिनमें भी यदि वर्षाऋतु हो अथवा आकाश मेघाच्छन्न हो तो नहीं हो सकता है। इस त्रुटिको मिटानेके लिये प्राचीन कालमें जल घडियोंका भारतमें प्रचार पाया जाता है और कई स्थानोंमें अब भी प्रचलित है।

यद्यपि आज तो जेब घडी, क्लाक, घण्टाघर आदि नवीन यन्त्रोंका आविष्कार और प्रचार हो जानेसे इन प्राचीन साधनोंकी एक प्रकारसे आवश्यकता ही नहीं रही है; तथापि मशीनसे चलने वाले इन यन्त्रोंको सही सच्चे रखनेमें इन छाया यन्त्रोंका उपयोग होता ही है।

जैसे दिनमें सूर्यके प्रकाशमें छायायन्त्र उपयोगी होते हैं उसी प्रकार रात्रिमें तारोंके द्वारा समय जाननेमें नलिकायन्त्र आदि वेधोपयोगी यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। वेधयन्त्रोंमें सबसे अधिक प्राचीन और उपयोगी भारतवर्षीय तुरीय यन्त्र है। इस तुरीय यन्त्रसे वेध करने पर कुछ गणित करना पडता है और तब ही इनसे कुछ फल ज्ञात होता है।

इस तुरीय यन्त्रका गत शताब्दियोंमें प्रचार अवश्य था। क्यों कि ज्योतिषियोंके घरानों-में तुरीय यन्त्र अनेक जगह पाया जाता है। किंतु ग्रीक देशके हिपार्कस नामक, ज्योतिषी जो ईसवी सन्‌के आरम्भ होनेसे ३०० वर्ष पूर्व हुआ था, उसके आविष्कृत Astrolabe या उस्तर-लाबका बहुत प्रचार हुआ। इस यन्त्र पर गुन्थर नामक पाश्चात्य विद्वान्‌ने दो बडी जिल्दोंमें एक ग्रन्थ अभी अभी लिख कर प्रकाशित किया है जिससे जाना जाता है कि ऐसा कोई भी देश नहीं जहां यह यन्त्र किसी न किसी रूपमें न पाया गया हो। इस यन्त्र पर अरब देशवालोंने अपनी भाषामें अनेक ग्रन्थ लिखे हैं और उन ग्रन्थोंके द्वारा इस यन्त्रकी अत्यन्त उपयोगिता सिद्ध होती है।

भारतवर्षमें इस यन्त्रका अधिक प्रचार मुगल साम्राज्य कालमें हुआ है और अब तक इस यन्त्रके वर्णनका, जैनआचार्य श्रीमहेन्द्रसूरिका **यन्त्रराज** नामका ग्रन्थ जो १५ वीं शताब्दीमें लिखा गया है प्रचारमें है और उस पर मलयेन्दुसूरिकी टीका भी है। केवल यह एक ही ग्रन्थ **यन्त्रराज** नामसे प्रसिद्ध है और काशी जयपुर आदिकी संस्कृत पाठशालाओंमें ज्यौतिषकी परीक्षाओंमें इसी ही ग्रंथका प्रचार है। इस ग्रंथ पर महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदीजीकी **प्रतिभाबोधक** नामकी टीका है। इस ग्रन्थके अतिरिक्त संस्कृतका कोई विशिष्ट ग्रन्थ अब तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

यद्यपि महाराजा सवाई जयसिंहजीके समयका **यन्त्रराजरचनाप्रकार** नामका यह ग्रन्थ पुस्तकालयोंमें उपलब्ध है किंतु अब तक प्रकाशित न होनेसे यह प्रचार में नहीं आया। यह

इतना सरल और सुगम है कि इसके जोडेका एक भी ग्रन्थ इस यन्त्रराज नामके यन्त्ररचनाका वा वेधप्रकारका नहीं है। महाराजा सवाई जयसिंहजीकी ४ बडी वेधशालाओंमें से केवल देहली और जयपुर वेधशालाओं में यह यन्त्र बडे आकारका उपलब्ध हैं। यन्त्रालयके यन्त्रोंके वर्णन में **सम्राट्सिद्धान्त** आदि ग्रन्थ हैं। किं तु सब यन्त्रोंके फलको एक ही यन्त्रसे प्राप्त किया जा सके ऐसा यह यन्त्रराज नामका एक ही यन्त्र है। इसके उपयोग तथा रचनाके वर्णनका यह **यन्त्रराज रचनाप्रकार** और **वेधविधि** नामका छोटासा ग्रन्थ जो बहुत ही उपयोगी प्रतीत होता है अब प्रकाशित किया जाता है। इस ग्रन्थके पहले अध्यायमें यन्त्रराज बनानेका और द्वितीय अध्याय में इसकी वेधविधि है। महेन्द्रसूरीजीके ग्रन्थमें यन्त्रराजका उपयोग और वेधविधि अवश्य लिखी गई है परन्तु रचनाप्रकार सरल रूपमें उपलब्ध नहीं है। इस ग्रन्थके प्रकाशनसे संभव है कि इस यन्त्रराजका ज्यौतिषियोंमें प्रचार अधिक हो जावे। क्यों कि आकाशके सूर्यादि ग्रहनक्षत्रों के वेधमें उपयुक्त ऐसा यह एक ही यन्त्र है जिसके द्वारा ज्यौतिषके ग्रहगणितसंबन्धी सब कार्य हो सके। इस ग्रन्थ पर एक छोटीसी टिप्पणी भी जोड दी है जिससे यह और भी सरल हो जायगा। यह टिप्पणी केवल प्रथमाध्याय पर ही लिखी गई है क्यों कि द्वितीयाध्याय जिसमें कि वेधविधि है सरल है।

इस भूमिकामें इस यन्त्रकी वेधविधि सर्वसाधारणके समझनेके हेतु हिन्दी भाषामें संक्षिप्त रूपसे लिखी गई है। इसके द्वारा इस यन्त्रका उपयोग प्रतीत हो जायगा। और नक्षत्रोंके स्थान जाननेके हेतु उनके राश्यादि स्थान, शर और क्रान्ति आदि, कालभेदके अन्तर कोष्ठकों समेत ज्योतिर्गणित नामक नवीन ग्रन्थसे दे दिये हैं, जो इस समयके पाश्चात्य ग्रहगणितके आधार पर भारतवर्षकी शैली पर बना है और सूर्यचन्द्रग्रहणादि गणितके लिये अद्वितीय और सर्वथा उपयोगी है। जिनकी सहायतासे इस यन्त्रके द्वारा आकाशस्थ ज्योतिःपदार्थों का वेध करनेमें सुविधा होगी।

यन्त्रराजके द्वारा वेध करनेकी विधि लिखनेसे पूर्व इस यन्त्रका संक्षिप्त रूपमें वर्णन लिखना आवश्यक है। क्यों कि यह यन्त्र समयज्ञान, ग्रहोंके स्थानोंका, तथा नक्षत्रोंके स्थानोंका, लग्न आदि द्वादश भावोंका, उन्नतांश दिगंश आदि पारिभाषिक ज्यौतिष संबन्धी पदार्थोंका ज्ञान-करनेके हेतु आविष्कृत हुआ है। एक प्रकार का यह Planisphere अर्थात् ताराचित्रोंके जोडेकी चीज है।

यन्त्रराजका संक्षिप्त वर्णन।

इस यन्त्रका केन्द्र ध्रुवस्थान है। ध्रुवसे ले कर मकरवृत्त (Tropic of capricorn) तक के आकाशीय कल्पित वृत्तोंका इस पर चित्रण किया गया है। स्थान स्थानके लिये अक्षांशानुसार यह यन्त्र पृथक् २ बनाया जाता है। इसी कारण प्रत्येक नगरका क्षितिज और उससे आरम्भ किये हुए उन्नतांश वृत्त अक्षांशानुसार भिन्न २ अक्षांशोंके यन्त्रोंके भिन्न स्थितिके होते हैं।

यन्त्रराजमें एक 'अक्षपत्र' और एक 'भपत्र' ये दो पत्र होते हैं। उनमें ऊपर भपत्र होता है जो प्रत्येक अक्षांशके लिये एक ही होता है; नीचे अक्षपत्र होता है वह अक्षांशभेदसे प्रत्येक अक्षांशके स्थानोंके लिये भिन्न २ होता है।

अक्षपत्रका वर्णन ।

यन्त्रराजके अक्षपत्रका किनारेका अन्तिम वृत्त मकरवृत्त कहलाता है । मकरवृत्त पर ऊर्ध्वाधर तथा पूर्वापर दो व्यासरेखाएं होतीं हैं । यन्त्रराजके मकरवृत्त और ऊर्ध्वाधर रेखाके संपात स्थानको दक्षिण और उत्तरदिशा माना गया है । ऊपरी संपात दक्षिण और नीचेका संपात उत्तर कहा जाता है । ऐसे ही आडी व्यासरेखाका बायां छोर पूर्व और दहिना छोर पश्चिम कहाता है । अन्तिमवृत्त मकर वृत्त और उससे भीतर वाला ध्रुवकेन्द्रका पहला वृत्त विषुववृत्त और उससे भीतर वाला कर्कवृत्त कहा जाता है । पूर्वापर रेखा और विषुव वृत्तके संपातस्थानको पूर्व बिन्दु और इसी तरह पश्चिम संपातस्थानको पश्चिम बिन्दु कहते हैं । ध्रुवस्थानके नीचेकी तरफ अर्थात् उत्तर दिशाकी तरफ पूर्वविन्दु और पश्चिमबिन्दुओंमें जानेवाला क्षितिजवृत्त होता है । ध्रुवस्थान अर्थात् यन्त्रके केन्द्रसे यह क्षितिजवृत्त अक्षांशतुल्य अन्तर पर होता है और यह क्षितिजवृत्त ही यन्त्रराजमें प्रधानता रखता है । इस क्षितिजवृत्तको आरम्भ कर के प्रत्येक अक्षपत्र पर ९० अंशतक ९० उन्नतांश वृत्त होते हैं । यन्त्रराजका आकार छोटा हो तो ये वृत्त छह छह अंशोंके अन्तरसे वा तीन तीन अंशोंके अन्तरसे रक्खे जाते हैं । जहां ९० अंश समाप्त होते हैं वह बिन्दु खस्वस्तिक कहलाता है और उससे ठीक सामने नीचेकी तरफ, उत्तर बिन्दुकी सीधमें, अधःस्वस्तिक होता है । इसी प्रकार खस्वस्तिक और अधःस्वस्तिकमें जानेवाले ऊर्ध्वाधर वृत्त दिगंशवृत्त कहलाते हैं और ये भी पूर्व और पश्चिमकी तरफ तथा ऊपरकी तरफ कुल मिला कर दाहिनी और बांयी तरफ ९० अंशोंके सूचक होते हैं । ये वृत्त भी उन्नतांश वृत्तोंकी तरह छह छह वा तीन तीन अंशोंके अन्तर पर यन्त्रराजकी छोटी बडी आकृतिके अनुसार होते हैं । इन दिगंश वृत्तोंमें जो वृत्त खस्वस्तिक और अधःस्वस्तिकमें होता हुआ पूर्व-पश्चिम बिन्दुओंमें विषुवद्वृत्तसे संपात करता हुआ जाता है; वह समवृत्त कहा जाता है । इन वृत्तोंके अतिरिक्त १२ होरावृत्त ऊर्ध्वाधर रेखाके दोनों तरफ क्षितिजसे विषुवद्वृत्तको काटते हुए होते हैं । इनसे एक एक घण्टेकी एक एक होराका ज्ञान होता है । ये अक्षपत्र प्रति अक्षांशके, जहांके लिये यन्त्रराज बनाया जाता है वहांके होते हैं । अक्षपत्रके भिन्न २ होनेके कारण एक दो यन्त्रराज ऐसे भी महाराजा सवाई जयसिंहजीके समयके जयपुरके म्यूजियम (अजायबघर) में वर्तमान हैं कि जिनमें ७ अक्ष पत्र हैं और उनके दोनों तरफ अक्षपत्र के वृत्त भिन्न २ अक्षांशोंके अङ्कित हैं जिससे जिस अक्षांश पर वेध करना हो उसीही अक्षांशके अक्षपत्रको ऊपरकी तरफ रख कर वहांका हिसाब हो सकता है । इस प्रकार एक ही यन्त्रराजमें दोनों तरफ १४ अक्षपत्र आ गये हैं । जिस अक्षांशका जो प्रसिद्ध स्थान वेधोपयुक्त माना गया है वहां २ के अक्षपत्र इसमें वर्तमान हैं । इनमें देहलीसे लेकर काश्मीर तकके अक्षपत्र हैं ।

अक्षपत्ररचनाप्रकार ।

इस यन्त्रराजमें अक्षपत्र प्रत्येक अक्षांशके लिये भिन्न भिन्न होते हैं । कारण यह कि इस यन्त्रका केन्द्र ध्रुव माना जाता है और ध्रुवसे क्षितिजवृत्त अक्षांशतुल्य अन्तर पर रहता है । और अक्षांश प्रत्येक स्थानके भिन्न भिन्न होते हैं इस कारण अक्षांशभेदसे यन्त्रराजकी रचना उस उस

नगरके अक्षांशानुसार होती है। अतः प्रत्येक अक्षांशके लिये यन्त्रराज एक ही उपयोगी नहीं हो सकता। इस असुविधाको मिटानेके हेतु अनेक नगरोंके अक्षांशानुसार एक ही यन्त्रराजके भीतर कई अक्षपत्र भिन्न २ नगरोंके प्राप्त होते हैं। इससे यन्त्रराजमें कई अक्षपत्रोंके रहनेके कारण भार अधिक हो जाता है। जिस यन्त्रराजमें कई अक्षपत्र हों ऐसे अरवी भाषाके तथा फारसी भाषाके एवं हिन्दी तथा संस्कृत भाषाके जयपुरके म्यूजियममें प्राप्त हैं। इनमें एक एक पीतलके पत्र पर दोनों तरफ अक्षपत्र हैं और वे भिन्न २ अक्षांशके नगरोंके हैं। म्यूजियममें जो यन्त्रराज है उनमें ७ प्लेट हैं और उनमें दोनों तरफ अक्षपत्र खुदे हुए हैं। एवं सर्वदेशीय भी अक्षपत्र एक पत्र पर एक तरफ वर्तमान है। यह सर्वदेशीय अक्षपत्र अक्षांशोंके भेद होने पर भी प्रत्येक स्थान पर उपयोगमें आता है किंतु उस पर केवल उन्नतांश और दिगंश ही जाने जाते हैं। इष्टकाल आदि जो उन्नतांश वृत्तोंके आधार पर आ सकते हैं वे इसमें उपलब्ध नहीं होते। यही सर्वदेशी कहाता है। क्षितिजादिवृत्त इसमें जो अक्षांशसे भिन्न २ देशोंमें भिन्न होते हैं वे सर्वदेशीय अक्षपत्र पर नहीं होते हैं। जिस प्रकार अक्षपत्र अक्षांशानुसार भिन्न होते हैं वैसे एक भपत्र ही सब देशोंमें उपयोगी होता है।

भपत्रकी रचना इस प्रकार होती है कि अक्षपत्रके मकर वृत्त और कर्क वृत्तको स्पर्श करता हुआ ध्रुवसे परम क्रान्तिज्याके तुल्य अन्तर पर क्रान्ति वृत्तका केन्द्र कदम्बस्थान कल्पना कर उससे मकरारम्भ तथा कर्कारम्भ पर जाता हुआ एक वृत्त क्रान्तिवृत्तके नामका बनाया जाता है और उस पर मेष-वृष-मिथुन आदि राशियां अपने २ मानसे, जो कि निरक्षदेश अर्थात् शून्य अक्षांश संबन्धी उदयपलोंके मानसे विभाजित कर अङ्कित कर दी जाती हैं, वेही सब अक्षांशोंके अक्षपत्र पर काम दे जाती हैं। कारण यह कि शून्य अक्षांश पर भी इन १२ राशियोंके मान क्रान्तिवृत्तके और विषुव वृत्तके परमक्रान्ति तुल्य कोण होने से एकही नहीं होते हैं। इस कारण प्रत्येक राशिका उदय होनेका काल परस्पर नहीं मिलता। क्यों कि परम क्रान्तितुल्य कोणका मान जैसे जैसे जिस जिस राशिका बढता या घटता है तदनुसार ही उनका तिरछापन भी कम जादा होता है और वह शून्य अक्षांशके लिये स्थिर है। यद्यपि इन राशियोंके उदयपल भी अक्षांशानुसार भिन्न २ मानके होते हैं किंतु भपत्र पर जो राशिमान अङ्कित किये जाते हैं वे शून्य अक्षांशके लिये स्थिर होते हुए भी, प्रत्येक अक्षांशके क्षितिज पर उस उस देशके राशियोंके उदयपल बतला देते हैं। ये राशियोंके मान क्रमसे २७८ पल, २९९ पल और ३२३ पल गणितके द्वारा स्थिर कर लिये गये हैं। ये मेष वृष और मिथुन राशिके लङ्कोदय पल माने जाते हैं। ये ही पल उलट कर कर्क सिंह कन्याके उदयपल हो जाते हैं। अर्थात ३२३ कर्क के २९९ सिंह के और २७८ कन्याके माने जाते हैं। यों छह राशियोंके उदयपल ही बाकी ६ राशियोंके अर्थात् तुला वृश्चिक धन मकर कुम्भ और मीन राशिके लङ्कोदयपल होते हैं। कन्या राशिसे जिसके उदयपल २७८ हैं वेही तुला राशिके और २९९ वृश्चिकके, ३२३ धनुके और फिर ३२३ पल मकरके, २९९ कुंभके, और २७८ पल जो प्रारम्भमें मेषके हैं वे मीनके होते हैं। अर्थात् इन १२ राशियोंके उदयपल ऊपर लिखे हुए

२७८, २९९, ३२३ इन पलोंको क्रमसे लिख कर फिर उलट कर लिखनेसे पहली छह राशियोंके और फिर उन्ही छह राशियोंके मान उलट कर बाकी छह राशियोंके होते हैं। यन्त्रराजके भपत्र पर ये राशियोंके मान विषुववृत्त पर अङ्कित अंशोंकी नापसे छह छह अंशकी एक घडीके अनुपातसे अङ्कित कर दिये जाते हैं, जो सब अक्षांशोंमें अक्षपत्रोंके भेद होने पर भी उन देशोंके लग्न आदि जाननेमें उपयोगी होते हैं। भपत्रकी रचनामें मुख्यतः क्रान्तिवृत्तीय १२ राशियोंके लङ्कोदय पलानुसार मानोंका अङ्कित करना ही प्रधानता रखता है।

यों तो भपत्रमें भी अक्षपत्रके मकरवृत्त पर ठीक बैठता हुआ मकरवृत्त एवं विषुववृत्त तथा कर्कवृत्त भी बनाये जाते हैं किंतु भपत्रमें प्रधानता क्रान्तिवृत्त ही की है।

इस प्रकार क्रान्तिवृत्त बना लेने पर आकाशके मोटे मोटे नक्षत्र, विशेषतः २७ नक्षत्र जिन का वेधमें उपयोग पडता है, वे क्रान्तिवृत्तसे शरके तुल्य अन्तर पर गणित करके अङ्कित किये जाते हैं और यह अङ्कन भपत्ररचनामें बड़ा महत्त्व रखता है। २७ नक्षत्रोंके सिवाय सप्तर्षि मण्डल तथा ब्रह्महृदय, प्रजापति आदि और और भी मोटे नक्षत्र क्रान्तिवृत्तके हिसाबसे अङ्कित किये जाते हैं और उनके ठीक स्थानोंको बतलाने वाले नक्षत्रचञ्चु बना दिये जाते हैं जिनसे उक्त नक्षत्रोंके वेध करनेमें सुविधा हो।

सारे आकाशको प्राचीन कालमें ग्रीक देशके टालमी नामक ज्योतिषीने ४८ राशियोंमें विभक्त किया था और उनके ग्रीक भाषामें नाम भी भिन्न रक्खे थे। उन नामोंके अर्थानुवादी संस्कृत नाम भारतवर्षके यन्त्रराजोंमें जैसे दण्डधर पुरुष, सर्पधारी पुरुष, नौका आदि एवं किरीटधर पुरुष नग्नान्तक आदि आज भी प्राप्त होते हैं। वर्तमान कालमें ये ४८ राशियां बढती बढती अब १०८ की संख्या पर पहुंच चुकी हैं। इन ४८ राशियोंकी सूची महाराजा जयसिंह-जीने तैमूरलंगके पोते उलूकबेगकी सारणीके अनुवादमें १०२९ तारोंकी गणिततालिका शर-भोग-विषुवांश आदि सब उपयोगी गणितको अपने समय तकका संस्कार दे कर ठीक दे दिया है जो वेध करनेमें परम उपयुक्त है। यों तो आज नाटिकल पञ्चाङ्गमें, जो ग्रीनिचकी वेधशालासे प्रतिवर्ष प्रकाशित होता है उसमें, दी हुई नक्षत्रतालिकाकी तुलनामें बहुत कम उपयुक्त है तथापि साधारणतया यन्त्रराजके वेधोंमें उपयोगी है।

इस प्रकार यन्त्रराजकी भपत्ररचनाका प्रकार है जो एक ही भपत्र सर्व देशके अक्षांशोंपर उपयोगी होता है।

यहां पर यह लिख देना भी अधिक आवश्यक है कि आकाशमण्डलके तारोंके स्थान प्रतिवर्ष विकला ५० पश्चिमको हटते जा रहे हैं और इन २००० वर्षोंमें इस हटनेका परिणाम यह हुआ है कि इस धीमी चालसे हटते हटते इनका हटाव २३ अंश १० कला पर पहुंच चुका है। आज उत्तरायण अंग्रेजी दिसम्बर मासकी २२ तारीख को हो जाता है किं तु मकर संक्रान्ति, जहां पहले कभी उत्तरायण होता था, १४ जनवरीको होती है जिसमें २३ दिनका अन्तर होता है।

महाराजा सवाई जयसिंहजी

यह **यन्त्रराजरचनाप्रकार** नामक पुस्तक स्वयं श्री जयसिंहजी महाराजकी रचना है ऐसी प्रसिद्धि है। ये महाराज ज्योतिष शास्त्रके ज्ञाता एवं इस शास्त्रके रसिक थे। जयपुर तथा देहली की यन्त्रशालाओंमें जयप्रकाश नामका यन्त्र इनका स्वयं आविष्कार है ऐसा उल्लेख है। इनकी बनवाई हुई भारतवर्षमें ४ यन्त्रशालायें अब भी विद्यमान हैं। इनका समय ई. १८४३ तक है।

इनके समयमें टालमी नामक ग्रीक विद्वान्के अलमजेस्ट नामक १३ अध्यायके बडे ग्रन्थका फारसीसे संस्कृतमें अनुवाद किया गया। यूक्लिड की रेखागणित जिसके १५ अध्याय हैं उसका भी संस्कृतमें अनुवाद हुआ। डि० लाम्बर के ग्रहगणितको लानेके लिये डि० लाहायर नामका पोर्चूगीज ज्योतिषी वहां भेजा गया और उस ग्रन्थको जिसका नाम **लेयरसारणी** है वहां से मंगवाया गया और उसका भी **दृक्पक्ष** नामसे संस्कृतमें अनुवाद हुआ। ७ वर्षतक भिन्न २ नगरोंकी स्वयं बनवाई हुई यन्त्रशालाओं में ग्रहोंका सतत वेध लिया जा कर ग्रहगणितका संशोधन हुआ। और उस समयके मुगल बादशाह मुहम्मदशाह नामके सम्राट के नामसे जीच **महम्मदशाही** नामका ग्रहगणितका फारसी ग्रन्थ बनवाया गया।

उस समयके इन ग्रन्थोंका तथा पाश्चात्य तथा अरबके विद्वानोंके ग्रन्थोंका वर्णन जीचमहम्मदशाही की फारसी भाषाकी पुस्तककी भूमिकाके आधार पर कलकत्ताकी एसियाटिक सोसाइटीसे प्रकाशित 'एसियाटिक रिसर्चेज्' वाल्यूम ५, में डब्ल्यू. हन्टरके लेखसे जानना चाहिये।

उस समयके ज्योतिषी सम्राट् जगन्नाथका नाम चिरस्मरणीय है। इस ही विद्वान्की सहायतासे, जिनको महाराजा जयसिंहजीने फारसी भाषामें अभिज्ञ कर, ऊपर लिखे ग्रन्थोंका अनुवाद तथा यन्त्रशालाओंका निर्माण कराया।

आज भी ज्यौतिषशास्त्रसंबन्धी इन यन्त्रशालाओंके आधार पर, ज्यौतिषशास्त्रसंबन्धी उन्नतिमें महाराजा **सवाई जयसिंह**जीका नाम इतिहासमें प्रसिद्ध है। और भारतवर्षका ज्यौतिष प्रेम **और इस शास्त्रकी उन्नतिमें** श्रम चिरकालतक प्रसिद्ध रहेगा।

इस ग्रन्थको अब इस तरह प्रकाशमें लानेका पूर्ण श्रेय, राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिरके सम्मान्य संचालक **पुरातत्त्वाचार्य** मुनि श्रीजिनविजयजीको है। इन्हींकी प्रेरणा और प्रोत्साहनसे हमने इस ग्रन्थका **यथामति संशोधन** एवं संपादन किया है और इनने, ग्रन्थको निर्णयसागर जैसे संस्कृत साहित्यके **सर्वोत्कृष्ट मुद्रणालयमें** मुद्रित करा कर तथा स्वयं इसके प्रुफ आदि देखनेमें और सुचारु रूपसे **मुद्रित करने**—कराने में जो अत्यधिक परिश्रम उठाया है तदर्थ मैं आपका बहुत ही उपकृत हूं।

ज्योतिषयन्त्रालय
जयपुर
ता. ३-१-५२

निवेदक—
केदारनाथ ज्योतिर्विद्

श्रीः

श्रीमन्महाराजाधिराज - श्रीजयसिंहदेव - कारिता
वेधक्रियासमन्विता

यन्त्रराजरचना ।

[अथ मकरवृत्त - नाडीवृत्त - कर्कवृत्तानां - व्यासार्धानयनम् ।]

आदावभीष्टं यन्त्रं धातुजं दारुजं वा वर्तुलं कार्यम् । तस्य मध्ये[1] केन्द्रं कृत्वा आपालिव्यासार्धमितेन कर्कटेन वृत्तं कुर्यात्[2] । तन्मकराहोरात्रवृत्तं भवति । तस्य केन्द्रं ध्रुवस्थानं ज्ञेयम् । तन्मध्ये ऊर्ध्वाधरा तिर्यग्रेखा च कार्या । तद्वृत्तं भांशै(३६०)श्चाङ्कनीयम् । तिर्यग्रेखाग्रद्वितये पूर्वापरदिगङ्कनं च[3] कार्यम् । ऊर्ध्वाधराग्रद्वितये याम्योत्तरदिगङ्कनं[4] कार्यम् ।

अथ दक्षिणदिशः सकाशात् पश्चिमदिशि परमक्रान्त्यंशान्[5] विगणय्य चिह्नं कार्यम् । तत्र चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरं कृत्वा द्वितीयाग्रं पूर्वदिक्चिह्ने स्थिरं कार्यम् । तत् सूत्रं याम्योत्तररेखायां यत्र लग्नं तत्र चिह्नं कार्यम् । मकरवृत्तकेन्द्राच्चिह्नं यावत्तन्मितव्यासार्धेन ध्रुवकेन्द्रकं वृत्तं कार्यम् । तन्नाडीवृत्तं भवति । तन्मेषतुलाहोरात्रवृत्तमपि ज्ञेयम् । तद्भांशैरङ्क्यम् ।

अथ मकरवृत्तकेन्द्रे सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरं कृत्वा[6] द्वितीयाग्रं पूर्वविगणितपरमक्रान्तिभागाग्रे स्थिरं कार्यम् । एवं स्थिरीभूतं सूत्रं नाडीवृत्ते यत्र लगति तत्र चिह्नं कार्यम् । पुनः सूत्रस्यैकाग्रं नाडीवृत्तगतचिह्ने स्थिरं कृत्वा द्वितीयाग्रं नाडीवृत्तगतपूर्वदिक्चिह्ने स्थिरं कार्यम् । एवं स्थिरीभूतं सूत्रं याम्योत्तररेखायां यत्र लगति तत्र चिह्नं कार्यम् । ततो मकरवृत्तकेन्द्राच्चिह्नं यावत्तन्मितव्यासार्धेन ध्रुवकेन्द्रकं वृत्तं कार्यम् । तत् कर्काहोरात्रवृत्तं भवति[7] ।

अथ गणितेन मकरवृत्त–नाडीवृत्त–कर्कवृत्तानां व्यासार्धानयनम् ।

तत्रादौ मकराहोरात्रवृत्तस्य व्यासार्धमानमभीष्टं कृत्वा तदनुसारेण नाडीवृत्तस्य व्यासार्धानयनम् ।

तद् यथा – परमक्रान्तिभागान्नवतेर्विशोध्य शेषांशानामुत्क्रमज्या कार्या । तां कल्पितमकराहोरात्रवृत्तस्य व्यासार्धेन[8] संगुण्य परात्पद्युज्यया भजेत् । एवं कृते सति यल्लभ्यते तदेव नाडीवृत्तस्य व्यासार्धमानं भवति । यद्वा परात्पद्युज्यां कल्पितमक-

१. 'मध्ये' इत्यधिकं पुण्यपत्तनपुस्तके. २. 'कार्यम्' पुण्य. ३. 'च' इति पुण्यपुस्तके न. ४. 'च' इत्यधिकम् पुण्य. ५. 'परम २४ क्रान्त्यंशान्' पुण्य. ६. 'कार्यम्' पुण्य. ७. पुण्य. पुस्तकेऽत्र—'एतेषां रचनाविधिर्लिख्यते यथा—' इत्यधिकः पाठः । ८. 'व्यासमानेन' पुण्य. पुस्तके पाठः । परं पुस्तकायुषि 'र्ध' इत्यपि पश्चाल्लिपीकृतं वर्तते ।

राहोरात्रवृत्तव्यासार्धमानेन संगुण्य ततः परमक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्यां द्विगुणितत्रिज्यातो विशोध्य शेषाङ्केन विभजेत् । फलं नाडीवृत्तस्य व्यासार्धमानं भवति ।

अत्रोपपत्तिः ।

समायां भूमावभीष्टत्रिज्यामितेन कर्कटेन वृत्तं कार्यम् । तन्मकराहोरात्रवृत्तं ज्ञेयम् । तन्मध्ये ऊर्ध्वाधरा तिर्यग्रेखा च कार्या तद्भांशैरङ्क्यम् । ऊर्ध्वाधररेखाग्रद्वितये दक्षिणोत्तरदिगङ्कनं कार्यम् । तिर्यग्रेखाग्रद्वितये पूर्वापराङ्कनं च कार्यम् ।

ततो दक्षिणदिक्चिह्नात् पश्चिमदिशि परमक्रान्तिभागान् विगणय्य तेषां भुजकोटिज्ये देये । कोट्यंशानां पूर्णज्या देया तत्र कोटेः पूर्णज्यैको भुजः, तथा वृत्त[2]-व्यासमितोऽपरो भुजः । पूर्वदिक्चिह्नात् विगणितपरमक्रान्तिभागाग्रपर्यन्तं यत् सूत्रं स तृतीयो भुजः । अस्मिन् त्रिभुजे कोटिक्रमज्यारूपलम्बनिपाताद् द्वे जात्यत्र्यस्रे[3] जायेते । तत्र कोटिज्या कोटिः, कोट्युत्क्रमज्या भुजः, कोटेः पूर्णज्या कर्णः ।

इत्येकं लघुक्षेत्रम् ।

तथा कोटिक्रमज्या कोटिः, कोट्युत्क्रमज्योना द्विगुणितत्रिज्या भुजः । पूर्वदिक्चिह्नाद्[4] विगणितपरमक्रान्तिभागाग्रपर्यन्तं यत्[5] सूत्रं स कर्णः ।

इति महत् क्षेत्रम् ।

अथ ज्ञाताभ्यां बृहल्लघुक्षेत्रसंबन्धिभुजकोटिभ्यामिष्टभुजकोट्योरानयनम्[6] ।

तत्रानुपातः—यदि पर[7]मक्रान्तिकोटिज्यातुल्य[8]कोटौ पर[9]मक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्यातुल्यो भुजस्तदा मकराहोरात्रवृत्तव्यासार्धमितं[10]कोटौ को भुज इति प्रसिद्धः प्रथमानुपातः । यद्वा उत्क्रमज्योनमकरव्यासकोटौ कोटिक्रमज्या भुजस्तदा मकरव्यासार्धमितं[11]कोटौ क[12] इति मेषतुला[13]होरात्रवृत्तव्यासमानं स्यात् । अथवा यदि पर[14]मक्रान्तिकोटिक्रमज्यातुल्ये भुजे परमक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्यातुल्या कोटिर्लभ्यते तदा कल्पितमकराहोरात्रवृत्तव्यासार्धतुल्ये भुजे का कोटिरित्यनुपातेनोपपन्नः प्रथमः प्रकारः । यद्वा पर[15]मक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्योनद्विगुणितत्रिज्यामितभुजेन परमक्रान्तिकोटिज्यामिता कोटिर्लभ्यते तदा कल्पितमकराहोरात्रवृत्तव्यासार्धेन केति द्वितीयः प्रकार उपपन्नः ।

अथ गणितेन कर्काहोरात्रवृत्तस्य व्यासार्धानयनम् ।

पर[16]मक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्या मेषतुलाहोरात्रवृत्तव्यासार्धमानेन हता पर[17]मक्रान्ति-

---

१. 'भवति' पुण्य. २. 'वृत्तस्य' पुण्य. ३. 'जात्यक्षेत्रे' पुण्य. ४. 'पूर्वदिक्चिह्नात् द्विगुणित' पुण्य. ५. 'यत्' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति. ६. 'कोट्यानयनम्' पुण्य. ७. 'परक्रान्ति' पुण्य. ८. 'तुल्ये' पुण्य. ९. 'परक्रान्ति' पुण्य. १०. 'मिते' पुण्य. ११. 'मिते' पुण्य. १२. 'किमिति' पुण्य. १३. 'मेषतुलामानं' पुण्य. १४. 'परक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्यातुल्ये भुजे परमक्रान्तिक्रमज्यातुल्या(या)कोटिर्लभ्यते तदा कल्पितमकराहोरात्रव्यासार्द्धे तुल्ये भुजे का कोटिः' पुण्य. १५. 'परक्रान्तिव्युत्क्रमज्योनव्यासतुल्ये भुजे परक्रान्तिकोटिज्यातुल्या कोटिर्लभ्यते तदा कल्पितमकराहोरात्रव्यासार्द्धतुल्ये भुजे का कोटिरित्यनुपातेनोपपन्नो द्वितीयः प्रकारः' पुण्य. १६. 'परक्रान्ति' पुण्य. १७. 'परक्रान्ति' पुण्य.

कोटिक्रमज्यया भाज्या यल्लभ्यते तदेव कर्कवृत्तस्य व्यासार्धमानं भवेत्[1]। यद्वा परम[2]-क्रान्तिकोटिज्यया नाडीवृत्तव्यासार्धेन[3] गुण्या परम[4]क्रान्तिकोव्युत्क्रमज्योनद्विगुणितत्रि-ज्यया भाज्या फलं[5] कर्कवृत्त[6]व्यासार्धमानं भवति।

अथवा नाडीवृत्तव्यासार्धवर्गो मकराहोरात्र[7]वृत्तव्यासार्धमानेन भाज्यः फलं वा कर्कवृत्तस्य व्यासार्धमानं भवति। यद्वा परम[8]क्रान्तिकोव्युत्क्रमज्या परमक्रान्तिक्रमज्यया भाज्या फलस्य वर्गो[9] मकरवृत्तव्यासार्धेन हतः षष्ठ्या भाज्यः फलं वा कर्कवृत्तस्य[10] व्यासार्धमानं भवति। एवं प्रकारचतुष्टयेन कर्काहोरात्रवृत्तस्य व्यासार्धे[11] ज्ञाते[12] तस्मान्ना-डीवृत्तमकरवृत्तव्यासार्धानयने विलोमविधिना। तत्र गुणकहरयोर्व्यत्यासः[13]।

अत्रोपपत्तिः।

समायां भूमावभीष्टत्रिज्यामितेन कर्कटकेन[14] वृत्तं[15] विधाय तत ऊर्ध्वाधररेखाङ्कनं भांशाङ्कनं[16] च कार्यम्। ततो[17] लघुबृहत्क्षेत्रद्वयं पूर्ववद्विरचय्य तत्रानुपातः। यदि परम-क्रान्तिकोटिज्याकोटौ परमक्रान्तिकोव्युत्क्रमज्यातुल्यो भुजो लभ्यते तदा नाडीवृत्त-व्यासार्धतुल्यायां[18] कोटौ[19] को भुज इत्यनुपातेनोपपन्नः प्रथमः प्रकारः।

यद्वा परम[20]क्रान्तिकोव्युत्क्रमज्योनद्विगुणित[21]त्रिज्याकोटौ परम[22]क्रान्तिकोटिक्रम-ज्यातुल्यो भुजो लभ्यते[23] तदा नाडीवृत्तव्यासार्धतुल्यायां[24] कोटौ को भुजः, इत्यनु-पातेनोपपन्नो द्वितीयः प्रकारः।

अथवा[25] मकरवृत्तव्यासार्धतुल्यायां कोटौ मेषतुला[26]होरात्रवृत्तव्यासार्धतुल्यो भुजस्तदा[27] नाडीवृत्तव्यासार्धतुल्यायां कोटौ क इत्यनुपातेनोपपन्नस्तृतीयः प्रकारः।

अथ क्षितिजवृत्तनिष्पादनप्रकारः।

आदौ पूर्वोक्तप्रकारेणाक्षपत्रे मकरादिवृत्तत्रयं विधाय नाडीवृत्तस्य[28] पश्चिमदिक्-चिह्नादुत्तरदिश्यभीष्टाक्षांशान् विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम्। अस्माच्चिह्नान्नाडीवृत्तस्थ-पूर्वदिक्चिह्नस्पृग्रेखा कार्या। सा याम्योत्तरसूत्रे यत्र लग्ना तत्र प्रथमसंज्ञं चिह्नं कार्यम्। पुनर्नाडीवृत्तस्थ[29]पूर्वदिक्चिह्नाद्दक्षिणदिश्यभीष्टाक्षांशान् विगणय्य चिह्नं कार्यम्। ततो नाडीवृत्तस्य[30] पूर्वचिह्नाद्द्विगणिताक्षांशभागचिह्नस्पृग्रेखा स्वमार्गवर्धमाना सती स्वमा[31]-

---

१. 'भवति' पुण्य. २. 'परक्रान्ति' पुण्य. ३. 'नाडीवृत्तव्यासार्धमानेन' पुण्य. ४. 'परक्रान्ति' पुण्य ५. 'फलं वा' पुण्य. ६. 'कर्कवृत्त' पुण्य. ७. 'मकराहोरात्रव्यासार्धमानेन' पुण्य. ८. 'परक्रान्ति' पुण्य. ९. 'फलवर्गो' पुण्य. १०. 'कर्कस्य' पुण्य. ११. 'वृत्तव्यासार्धे' पुण्य. १२. 'ज्ञाते सति' पुण्य. १३. 'गुणहरव्यत्यासः' पुण्य. १४. 'कर्कटेन' पुण्य. १५. 'वृत्ते' पुण्य. १६. 'भागांशाङ्कनं' पुण्य. १७. 'तत् बृहत् क्षेत्रं लघुक्षेत्रद्वयं च' पुण्य. १८. 'व्यासार्धमितायां' पुण्य. १९. 'कोटौ क' पुण्य. २०. 'परक्रान्ति' पुण्य. २१. 'द्विगुणा' पुण्य. २२. 'पर-क्रान्तिकोटयुत्क्रमज्या' पुण्य. २३. 'लभ्यते' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति। २४ 'मितायां क इत्यनुपातेन' पुण्य. २५. 'यद्वा' पुण्य. २६. 'नाडीवृत्त' पुण्य. २७. 'स्त्वत्र' पुण्य. २८. 'नाडीवृत्तस्थ' पुण्य. २९. 'नाडीवृत्तस्थ दिक्चिह्नात्' पुण्य. ३०. 'नाडीवृत्तस्थपूर्वदिक्चिह्नाद्' पुण्य. ३१. 'स्वमार्गवर्धमाने' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति।

गेवर्द्धमाने याम्योत्तरसूत्रे यत्र लगंति[1] तत्र चिह्नं कार्यम्। अस्माच्चिह्नात् प्रथमचिह्न-पर्यन्तं यावद् याम्योत्तरखण्डं[2] भवति तस्यार्धे केन्द्रं कृत्वा खण्डार्धमितकर्कटेकेन[3] वृत्तं कार्यम्। तत् स्वक्षितिजं[4] भवति।

अथ गणितेन क्षितिज[5]केन्द्रव्यासानयनम्।

अभीष्टाक्षांशानां क्रमोत्क्रमज्ये कार्ये। तत[6] उत्क्रमज्या नाडीवृत्तव्यासार्धमानेन गुण्या[7] अभीष्टाक्षांशक्रमजीवया भाज्या फलमनष्टं स्थाप्यम्। पुनरभीष्टाक्षांशज्या नाडीवृत्तव्यासार्धेन[8] गुण्या अभीष्टाक्षांशोत्क्रमज्यया भाज्या फलमनष्टस्थापितफले यो[9]-ज्यम्। तस्यार्धं क्षितिजव्यासार्धं भवति। यद्वा अभीष्टाक्षांशज्या नाडीवृत्तव्यासार्ध-मानेन गुणा अभीष्टाक्षांशोत्क्रमज्योनद्विगुणत्रिज्यया भाज्या फलमनष्टं स्थाप्यम्। पुनरभीष्टाक्षांशोत्क्रम[10]जीवोनद्विगुणत्रिज्या नाडीवृत्तव्यासार्धमानेन गुणा अभीष्टाक्षां-शज्यया भाज्या फलमनष्टस्थापितफले योज्यम्[11]। तस्यार्धं क्षितिज[12]व्यासार्धमानं भवति। [13]अथ क्षितिजव्यासार्धमानं प्रथमफलेनोनितं ध्रुवात् क्षितिजकेन्द्रमानं भवति।

अत्रोपपत्तिः।

नाडीवृत्तगतपश्चिमचिह्नात् उत्तरदिश्यभीष्टाक्षांशभागान् विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम्। तेषां क्रमोत्क्रमज्ये पूर्णज्या च देयाः[14]। ततो नाडीवृत्तस्य पूर्वदिक्चिह्नात् पश्चिमे[15]दिशो विगणिताक्षभागचिह्न[16]पर्यन्तं या रेखा स प्रथमो भुजः[17]। अक्षभागपूर्णज्या द्वितीयो भुजः। तथा द्विगुणितत्रिज्या तृतीयो भुजः। इदं महत् क्षेत्रम्। अस्योदरे, अक्षज्या[18]रूपलम्बनिपातनात्[19] द्वे जात्यक्षेत्रे जायेते[20]। तत्राक्षज्या कोटिः अक्षांशोत्क्रमज्या भुजः। पलांशपूर्णज्या कर्णः।

इति लघुक्षेत्रम्।

तथा, अक्षज्या भुजः। अक्षोत्क्रमज्योनद्विगुणितत्रिज्या[21] कोटिः, नाडीवृत्त-स्यपूर्वदिक्चिह्नाद्विगणिता[22]क्षभागपर्यन्तं या रेखा स कर्णः।

इति महत् क्षेत्रम्।

---

१. 'लग्ना' पुण्य. २. 'याम्योत्तररेखाखण्डं' पुण्य. ३. 'कर्कटेन' पुण्य. ४. 'क्षितिजं' पुण्य. ५. 'क्षितिज-वृत्तस्य केन्द्रव्यासानयनम्' पुण्य. ६. 'तत्र' पुण्य. ७. 'गुणा' पुण्य. ८. 'नाडीवृत्तव्यासार्धमानेन गुणा' पुण्य. ९. पुण्य. पुस्तकस्यायुषि–'योगवियोगौ तस्यार्द्धं क्षि. व्या. के. मानौ भवतः' 'योगवियोगौ कार्यौ तस्यार्धं' इति १०. 'त्क्रमज्योनगुणितत्रिज्या' पुण्य. ११. 'स्थापिते'पुण्य. १२. 'क्षितिजस्य' पुण्य. १३. पुण्यपुस्तके–'अथेत्यादि–भवति' इत्यन्तः पाठो नास्ति। १४. 'देया' पुण्य. १५. 'पश्चिमदिशि' पुण्य. १६. 'चिह्न' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति। १७. 'कुजः' पुण्य. १८. 'अक्षांशज्या' पुण्य. १९. 'निपातात्' पुण्य. २०. 'जाते' पुण्य. २१. 'द्विगुण' पुण्य. २२. 'विगणित' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति।

एवं क्षेत्रद्वयात्मकं[1] प्रथमसंज्ञं क्षेत्रं विरचय्य ततो नाडीवृत्तस्थपूर्वदिक्चिह्ना-
द्दक्षिणदिश्यभीष्टाक्षांशान्[2] विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम्। तत्र नाडीवृत्तस्थ[3]पूर्वदिक्चिह्नं
अक्षभागचिह्नं स्वमार्गवर्द्धमानं[4]याम्योत्तरसूत्रं यथा स्पृशति तथा कृता रेखा कर्णः।
नाडीवृत्तव्यासार्धं भुजः ध्रुवात् स्वमार्गवर्धमानं याम्योत्तरसूत्रं च यथा स्पृशति तथा
कृता रेखा कर्णः। नाडीवृत्तव्यासार्धं भुजः। ध्रुवात् स्वमार्गवर्धमानं याम्योत्तरसूत्रं
कर्णाग्रावधि कोटिः। अस्मिन् महत्क्षेत्रे अक्षज्यारूपलम्बनिपातनात्[5] लघुक्षेत्रद्वयमुत्पद्यते[6]।
तत्राक्षज्या कोटिः। अक्षांशोत्क्रमज्या भुजः। अक्षांशपूर्णज्या कर्णः। एवं क्षेत्रद्वया-
त्मकं द्वितीयसंज्ञं विधाय प्रथमक्षेत्रेणानुपातः। यद्यक्षज्याकोटौ अक्षोत्क्रमज्या भुजः
तदा नाडीवृत्तव्यासार्धमितायां कोटौ को भुज[7] इत्यनुपातेनोपपन्नं प्रथमफलम्। अथ
द्वितीयक्षेत्रेऽनुपातः। यद्यक्षोत्क्रमज्याभुजे अक्षज्या कोटिः तदा नाडीवृत्तव्यासार्धतुल्ये[8]
भुजे का[9] इत्यनुपातेनोपपन्नं द्वितीयफलम्। तयोः[10] प्रथमद्वितीयफलयोर्योग[11]वियोगार्धे
क्रमेण[12] क्षितिजस्य व्यास(ध्रुवात्) केन्द्रमाने स्तः। एवमुपपन्नः प्रथमः प्रकारः[13]। अथवा
प्रथमक्षेत्रेऽनुपातः। अक्षोत्क्रमज्योनद्विगुणितत्रिज्याकोटौ अक्षज्या भुजः तदा नाडी-
वृत्तव्यासार्द्धमितायां कोटौ को[14] भुज इत्यनुपातेनोपपन्नं[15] प्रथमफलम्। द्वितीयक्षेत्रेऽ-
नुपातः—यद्यक्षांशज्याभुजेन उत्क्रमज्योनद्विगुणितत्रिज्याकोटिर्लभ्यते तदा नाडीवृत्त-
व्यासार्धेन का कोटिरेवं द्वितीयफलम्। यद्य[16]क्षोत्क्रमज्याकोटौ अक्षज्या भुजः तदा
नाडीवृत्तव्यासार्धमितकोटौ को भुज इत्यनुपातेनोपपन्नं द्वितीयफलम्। शेषं पूर्ववत्
प्रथमद्वितीययोर्योगार्धे क्रमेण क्षितिजस्य व्यासार्धकेन्द्रे स्तः। इति द्वितीयः प्रकारः।

अथ क्षितिजादग्रे उन्नतवलयनिष्पादनप्रकारः।

नाडीवृत्तस्य पूर्वदिक्चिह्नात् स्वा[17]क्षभागसंबन्धिचिह्नात् षड्भान्तरितप्रदेशात्
दक्षिणदिश्यभीष्टांशान् विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम्। त[18]च्चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरं कृत्वा
द्वितीया[19]ग्रं नाडीवृत्तस्य पूर्वदिक्चिह्ने स्थिरं कार्यम्। एवं स्थिरीभूतं सूत्रं याम्योत्तर-
रेखायां यत्र लगति[20] तत्र प्रथम[21]संज्ञं चिह्नं कार्यम्। पुनर्यावत्संख्यां[22]शाः षड्भान्त-
रितप्रदेशाद्दक्षिणदिशि दत्तास्तावत्संख्याकांशाः पूर्वदिशो दत्ताक्षभागाग्राद्दक्षिणदिशि
विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम्। ततो नाडीवृत्तस्थपूर्वदिक्चिह्ने[23] सूत्रैकाग्रं स्थिरं कृत्वा
द्वितीयाग्रमक्षभागाद्दत्तेष्टभागे[24]चिह्नोपरिगामि यत् सूत्रं स्वमार्गवर्धमानं याम्योत्तरसूत्रं
यथा स्पृशति तथा स्थाप्यम्। एवं स्थापितं सू[25]त्रं याम्योत्तररेखायां यत्र लग्नं तत्र

१. 'क्षेत्रयात्मकं' पुण्य. परं पुस्तकायुषि 'त्र' इति लिखितमतः 'क्षेत्रत्रयात्मकं' इति पाठः सिद्ध्यति। २ 'अक्षभागान्' पुण्य. ३. 'नाडीवृत्तस्य' पुण्य. ४. 'वर्धमानं' पुण्य. ५. 'निपातात्' पुण्य. ६. 'लघुक्षेत्रे उत्पद्येते' पुण्य. ७. 'क इत्युपपन्नं' पुण्य. ८. 'व्यासार्द्धमानतुल्ये' पुण्य. ९. 'का' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति। १०. 'तयोः प्रथम-द्वितीयफलं तयोः' इति द्विः पुण्य. पुस्तके. ११. 'योगार्द्धे' पुण्य. १२. 'क्रमेण व्यासकेन्द्रमाने क्षितिजस्य' पुण्य. १३. 'प्रथमप्रकारः' पुण्य. १४. 'क' पुण्य. १५. 'इत्याद्यफलमुपपन्नं' पुण्य. १६. 'यद्यक्षोत्क्रमज्या' इत्याद्यारभ्य 'इति द्वितीयः प्रकारः' इत्यन्तः पाठः. पुण्य. पुस्तके नास्त्येव। १७. 'स्व' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति। १८. 'तत्र चिह्ने' पुण्य. १९. 'द्वितीया(?)' पुण्य. २०. 'लग्नम्' पुण्य. २१. 'प्रथमं' पुण्य. २२. 'संख्यांशाः' पुण्य. २३. 'चिह्ने (ह्न?)स्य सूत्रस्यैकाग्रं' पुण्य. २४. 'दत्तेष्टभागचिह्नं तथा स्वमार्गवर्द्धमानं' पुण्य. २५. 'स्थापितसूत्रं पुण्य.

चिह्नं कार्यम् । अस्माच्चिह्नात् प्रथमसंज्ञचिह्नपर्यन्तं यावद् याम्योत्तरसूत्रस्य खण्डं भवति तस्यार्धे केन्द्रं कृत्वा अर्धप्रदेशमितकर्कटेन वृत्तं कार्यम् । तदुन्नतवलयं भवति । एवमग्रेऽपि अभीष्टोन्नतवलयानि कार्याणि ।

अथ[1] गणितेनोन्नतवलयानां केन्द्रव्यासानयनम् ।

अभीष्टाक्षांशेषु अभीष्टांशा[2] एकत्र क्षेप्याः, अन्यत्रापनेयाः[3] । वियोगविशिष्टाक्षांशानां क्रमोत्क्रमज्ये कार्ये । उत्क्रमज्या मेषव्यासार्धप्रमाणगुणा क्रमज्यया भाज्या फलमनष्टं स्थाप्यम् । पुनर्योगविशिष्टाक्षांशानां क्रमोत्क्रमज्ये कार्ये । उत्क्रम[4]ज्या मेषव्यासार्धप्रमाणगुणा क्रम[5]ज्यया भाज्या फलमनष्टं स्थाप्यम् । पुनर्योगविशिष्टाक्षांशानां क्रमोत्क्रमज्ये कार्ये । क्रमज्या मेषव्यास[6]ार्धप्रमाणगुणा उत्क्रमज्यया भाज्या फलमनष्टस्थापितफले योज्यम् । फलं[7]मुन्नतवलयस्य व्यासो भवति । फलयोगार्धे[8] च केन्द्रं भवति । अथवा योगविशिष्टाक्षांशज्[9]या मेषवृत्त[10]व्यासार्धप्रमाणगुणा योगविशिष्टांक्षोत्क्रमज्योनद्विगुणत्रिज्यया भाज्या फलं[11]मनष्टं स्थाप्यम् । पुनर्योगविशिष्टाक्षांशोत्क्रमज्योनद्विगुणत्रिज्या नाडीवृत्तव्यासार्धगुणा योगविशिष्टाक्षांशज्यया भाज्या । फलमनष्टस्थापितफले योज्यं व्यासः स्यात् । योगार्धं केन्द्रं च[12] भवति । अस्योपपत्तिः क्षितिजवज्ज्ञेया[13] ।

अथ समवृत्तनिष्पादनप्रकारः ।

ध्रुवस्थानाद्दक्षिणदिक्स्थितान्नाडीवृत्तयाम्योत्तररेखासंपातात् पश्चिमदिश्यभीष्टा[14]क्षांशान् विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । तच्चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरं कृत्वा द्वितीयाग्रं नाडीवृत्तस्य[15] पूर्वदिक्चिह्ने स्थाप्यम् । एवं स्थापितं सूत्रं याम्योत्तररेखायां यत्र लगति[16] तत्र चिह्नं कार्यम् । अत्रैव खमध्यः । पुनरुत्तरदिक्स्थितान्नाडीवृत्तयाम्योत्तरसूत्रसंपातात् पश्चिमदिश्य[17]भीष्टांशान् विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । ततो[18] नाडीवृत्तस्थपश्चिमदिक्चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरं कृत्वा द्वितीयाग्रं दत्ताक्षभागचिह्नोपरि नीयमानं[19] यत्र याम्योत्तरसूत्रे स्पृशति तत्र चिह्नं कार्यम् । तदधः[20] स्वस्तिकं ज्ञेयम् । अस्मात् चिह्नात् खमध्यपर्यन्तं याम्योत्तरसूत्रस्य यावत् खण्डं तस्यार्धे केन्द्रं कृत्वा खमध्योपरि वृत्तं कार्यम् । तत्समवृत्तं भवति ।

---

१. 'अथोन्नतवलयानां केन्द्रव्यासानयनं गणितेन' पुण्य. २. 'अभीष्ट' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ३. 'अपनीयाः' पुण्य. पुस्तके. ४. 'क्रमज्या मेषप्रमाणगुणा' पुण्य. ५. 'उत्क्रमज्यया' इत्यारभ्य 'क्रमोत्क्रमज्ये कार्ये' इत्यन्तः पाठः पुण्य. पुस्तके त्रुटितः । ६. 'व्यासार्द्ध' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ७ 'फलं' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ८. 'फलयोगार्द्धं केन्द्रं भवति' पुण्य. ९. 'अक्षज्या' पुण्य. १०. 'मेषप्रमाणगुणा' पुण्य. ११. 'फलमनष्टं' इत्यारभ्य 'व्यासः स्यात्' इत्यन्तपाठस्थाने पुण्य. पुस्तके 'फलं स्थापितफले योज्यं व्यासः स्यात्' इति पाठः । १२. 'च' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । १३. 'ज्ञेया' इति पुण्य. पुस्तके न । १४. 'अभीष्टाक्षभागान्' पुण्य. १५. 'नाडीवृत्तस्य' पुण्य. १६. 'लग्नं' पुण्य. १७. 'अभीष्ट' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । १८. 'ततः सूत्रस्यैकाग्रं नाडीवृत्तस्य पश्चिमदिक्चिह्ने स्थिरं कृत्वा' पुण्य. १९. 'गत्वा यथा याम्योत्तरसूत्रं' पुण्य. २०. 'तदधरस्वस्तिकं' पुण्य.

अथ गणितेन समवृत्तव्यासार्धानयनम् ।

लम्बांशकानामुत्क्रमज्या मेषव्यासार्धप्रमाणगुणा लम्बज्यया भाज्या फलमनष्टं स्थाप्यम् । पुनर्लम्बांशज्या मेषव्यासार्धप्रमाणगुणा लम्बांशोत्क्रमज्यया भाज्या फलमनष्टस्थापितफले योज्यम् । समवृत्तस्य व्यासो भवति । योगार्धं च केन्द्रं भवति । यद्वा लम्बज्या मेषव्यासार्धप्रमाणगुणा लम्बांशोत्क्रमज्योनद्विगुणत्रिज्यया भाज्या फलमनष्टं स्थाप्यम् । पुनः लम्बांशोत्क्रमज्योनद्विगुणत्रिज्या मेषव्यासार्धप्रमाणगुणा लम्बज्यया भाज्या फलमनष्टस्थापितफले योज्यं वा समवृत्तस्य व्यासस्तत्सार्धं च खमध्यादुत्तरदिशि याम्योत्तररेखायां केन्द्रं भवति ।

[12]खमध्यज्ञानं तु लम्बांशकानामुत्क्रमज्या मेषप्रमाणगुणा लम्बज्यया भक्ता आप्तफलाङ्कप्रमिताङ्केन ध्रुवाद् याम्योत्तररेखायां दक्षिणदिशि खमध्यचिह्नं भवति ।

अत्रोपपत्तिः ।

जलसमीकृतभुवि अभीष्टव्यासार्धेन नाड्याह्वयं वृत्तं ऊर्ध्वाधररेखाग्रद्वितये दक्षिणोत्तरदिगङ्कितं तथा तिर्यग्रेखाग्रद्वितये पूर्वापराङ्कितं च कार्यम् । भांशैश्चाङ्क्यम् । तत्र दक्षिणदिशः सकाशात् पश्चिमदिश्यक्षांशान् विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । अस्माच्चिह्नात् पूर्वदिक्चिह्नपर्यन्ते रेखा कार्या स कर्णः । लम्बज्या भुजः । लम्बांशोत्क्रमज्योनद्विगुणत्रिज्या कोटिः । इति महत् क्षेत्रम् । तथा लम्बज्या कोटिः । लम्बांशोत्क्रमज्या भुजः । लम्बांशपूर्णज्या कर्णः । इति लघुक्षेत्रम् । एवं क्षेत्रद्वयात्मकं प्रथमं क्षेत्रम् ।

तथा उत्तरदिशः सकाशात् पूर्वदिश्यक्षभागान् विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । एतच्चिह्नं तथा पूर्वदिक्चिह्नं स्पृशति तथा कृता रेखा स कर्णः । नाडीवृत्तव्यासार्धं भुजः । भुजमूलात् कर्णाग्रावधि याम्योत्तरसूत्रं सा कोटिः । इति महत् क्षेत्रम् । अन्यत्र लम्बज्या कोटिः । लम्बांशोत्क्रमज्या भुजः । लम्बांशपूर्णज्या कर्णः । इति लघुक्षेत्रम् । एवं क्षेत्रद्वयात्मकं द्वितीयं क्षेत्रम् ।

तत्र प्रथमक्षेत्रेऽनुपातः । यदि लम्बज्याकोटौ लम्बांशोत्क्रमज्या भुजः तदा नाडीवृत्तव्यासार्धमितायां [कोटौ] को[22] भुज इत्यनुपातेनोपपन्नं प्रथमफलम् ।

---

१. 'मेषप्रमाणगुणा' पुण्य २. 'भक्ता' पुण्य ३. 'लम्बज्या मेषप्रमाणगुणा' पुण्य. ४. 'स्थापिते योज्यं' पुण्य. ५. 'योगार्धं केन्द्रं च भवति' पुण्य. ६. 'मेषप्रमाणगुणा' पुण्य. ७. 'द्विगुणित' पुण्य. ८. 'द्विगुणितत्रिज्या' पुण्य. ९. 'मेषप्रमाणगुणा' पुण्य. १०. 'लम्बज्याभक्ता' पुण्य. ११. 'व्यासो योगार्द्धं केन्द्रं च भवति' पुण्य १२. 'खमध्यज्ञानं तु' इत्यारभ्य 'खमध्यचिह्नं भवति' इत्यन्तः पाठः पुण्य. पुस्तके नास्ति। १३. 'रेखाभ्यां भांशैश्चाङ्कितं कार्यम् । ऊर्ध्वाधररेखाद्वितीये दक्षिणोत्तरदिगङ्कनं तथा तिर्यग्रेखाग्रद्वितीये पूर्वापराङ्कनं कार्यम्' पुण्य. १४. 'तस्मात्' पुण्य. १५. 'चिह्न' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति। १६. 'द्विगुत्रिज्या' पुण्य. १७. 'लघुक्षेत्रद्वयात्मकं प्रथमक्षेत्रम्' पुण्य. १८. 'तत्र' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । १९. 'स' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । १०. 'सा' इति पुण्य, पुस्तके नास्ति । २१. 'तथा' इति पुण्य. २२. 'क इत्युपपन्नं प्रथमफलम्' पुण्य,

द्वितीयक्षेत्रेऽनुपातः। लम्बांशोत्क्रमज्यातुल्ये[1] भुजे लम्बज्या कोटिः तदा नाडीवृत्त-व्यासार्धतुल्ये भुजे का[2] कोटिः इत्यनुपातेनोपपन्नं द्वितीयफलम्। प्रथमद्वितीयफलयो-र्योगो व्यासमानं योगार्धं केन्द्रमानं च भवति।

यद्वा[3] लम्बांशोत्क्रमज्योनद्विगुणत्रिज्याकोटौ लम्बज्यापरिमितो भुजो लभ्यते तदा नाडीवृत्तव्यासार्धेन क इत्युपपन्नं प्रथमफलम्। पुनर्लम्बज्याभुजे लम्बांशोत्क्र-मज्योनद्विगुणत्रिज्या कोटिर्लभ्यते तदा नाडीवृत्तव्यासार्धेन का कोटिरित्युपपन्नं द्वितीयफलम्। प्रथमद्वितीयफलयोर्योगो योगार्धं च व्यासकेन्द्रमाने स्तः॥

अथ दिग्वलयनिष्पादनप्रकारः।

तत्रादौ समवृत्ते स्वसंबन्धिनी[4] पूर्वापररेखा कार्या। खमध्ये सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरं कृत्वा तदेव सूत्रं नाडीवलयप्रत्यंशे भ्राम्यमाणं सत् सूत्रं क्षितिजे यत्र यत्र लग्नं[5] तत्र तत्र चिह्नं कार्यम्। ततः क्षितिजगतं चिह्नं तथा खमध्यमधःस्वस्तिकं च यथा स्पृशति तथा खमार्गवर्धमाने समवृत्तस्य पूर्वापरसूत्रे केन्द्रं कृत्वा वृत्तं कार्यम्। तद्दि-ग्वलयं[6] भवति।

अथ गणितेन[7] दिग्वलयव्यासार्धानयनम्[8]।

यावदंशसंबन्धि दिग्वलयं[9] कार्यं तावदंशा[10] नवतितो विशोध्याः। शेषांशा दिगंशकोट्यंशाः। तेषां क्रमोत्क्रमज्ये कार्ये। तत्र[11] उत्क्रमज्या समवृत्तव्यासार्धेन गुण्या क्रमज्यया भाज्या फलमनष्टं स्थाप्यम्। पुनरुत्क्रमज्योनद्विगुणत्रिज्या समवृत्तव्या-सार्धेन गुण्या क्रमज्यया भाज्या फलमनष्टस्थापित[12]फले योज्यम्। दिग्वलय[13]व्यासो भवति। योगार्धं[14] च केन्द्रं भवति। अत्र[15] खमध्यचिह्नात् दिग्वृत्तव्यासार्धमितेन कर्क-टकेन सममण्डलस्य पूर्वापररेखायां चिह्नं कार्यं तद्दिग्वृत्तस्य केन्द्रं भवति। तस्मात् केन्द्रात् तेनैव व्यासार्धेन खस्वस्तिकाधःस्वस्तिकगतं वृत्तं कार्यं तदेव दिग्वलयं भवति। एवमन्यान्यपि दिग्वलयानि कार्याणि।

यद्वा दिगंशकोटिज्या समवृत्तव्यासार्धगुणा दिगंशकोट्यंशोत्क्रमज्योनद्विगुण-त्रिज्यया भाज्या। फलमनष्टं स्थाप्यम्। पुनर्दिगंशकोट्यंशज्या[16] समवृत्तव्यासार्धगुणा उत्क्रमज्यया भाज्या फलमनष्टस्थापितफले योज्यम् वा दिग्वलयस्य व्यासमानं[17] भवति। योगार्धं च[18] केन्द्रं भवति।

---

१. 'तुल्य' इति नास्ति पुण्य. पुस्तके. २. 'का इत्यनेनोपपन्नं द्वितीयफलम्' पुण्य. ३. 'यद्वा' इत्यारभ्य 'व्यासकेन्द्रमाने स्तः' इत्यन्तः पाठः पुण्य. पुस्तके नास्ति। ४. 'स्वस्वसंबन्धिनी' पुण्य. ५. 'लगति' पुण्य. ६. 'तद्दिग्वृत्तं भवति' पुण्य. ७. 'गणितेन' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति। ८. 'व्यासार्धानयनम्' पुण्य. ९. 'दिग्वलनं' पुण्य. १०. 'तावतोंशा नवतौ शोध्याः'। पुण्य. ११. 'तत्र' पुण्य. १२. 'स्थापिते' पुण्य. १३. 'दिग्वृत्त' पुण्य. १४. 'योगार्द्धं केन्द्रं च भवति' पुण्य. १५. 'अत्र' इत्यारभ्य 'दिग्वलयानि कार्याणि' इतिपर्यन्तं पाठः पुण्य. पुस्तके नास्ति। १६. 'कोटिज्या' पुण्य. १७. 'दिग्वृत्तव्यासमानं' पुण्य. १८. 'केन्द्रं च' पुण्य.

अत्रोपपत्तिः ।

क्षितिजकेन्द्रव्यासानयनवत् । तत्रैतावान् विशेषः—समवृत्तं नाडीवृत्तं प्रकल्प्य खस्वस्तिकाधःस्वस्तिकौ (के?) पूर्वापरदिक्चिह्ने कार्ये पूर्वापरस्वस्तिके दक्षिणोत्तरचिह्ने कार्ये ।

तत्रैकांशवशतो[1] यानि दिग्वलयानि तानि एकाद्यंशभेदेन नवतिपर्यन्तं भुजवृत्तानि भवन्ति । तेषां क्षेत्र[2]रचनां स्व[3]क्षितिजवद्विधायास्य गणितस्योपपत्तिर्द्रष्टव्या किं लिखनविस्तरेण ।

अथ[4] होरानिष्पादनप्रकारः ।

तत्र होरा द्विविधा[5] । एका विषमा अन्या[6] समा । विषमहोराया लक्षणमिष्टाहोरात्रसंख्यायाश्चतुर्विंशतिविभागाः । समाया[7] लक्षणमिष्टदिनमानसंख्याया द्वादश भागाः । ते भागाः स्वस्वमानेन न्यूनाधिकाः । अतो विषमाः ।

निष्पादनप्रकारः[8] ।

आदौ क्षितिजादधोभागे मकरकर्कनाडीवृत्तानां[9] यानि खण्डानि तेषां द्वादश भागाः समाः कार्याः । ततः क्षितिजान्मकराहोरात्रवृत्तगतप्रथमचिह्ने कर्कट[क]स्यैकाग्रं धृत्वा ततोऽभीष्टस्थाने द्वितीयाग्रेणोभयत्र वृत्तखण्डद्वयं कार्यम् । पुनः कर्कटाग्रं क्षितिजान्नाडीवृत्तप्रथमचिह्ने धृत्वा पूर्वगृहीतकर्कटविस्तारेण वृत्तं कार्यम् । तत्प्रथमवृत्तखण्डद्वये यत्र लगति तत्र चिह्ने कार्ये । पुनरपि तदेव कर्कटाग्रं कर्कवृत्तस्य[10] प्रथमचिह्ने धृत्वा गृहीतकर्कटविस्तारेणैव कृतं वृत्तं मकरवृत्तप्रथमचिह्नवशेन कृते ये[11] वृत्तखण्डे तयोर्यत्र स्पृशति तत्र चिह्ने कार्ये । एवं चिह्नचतुष्टयं जातम् । तेषु द्वयोर्द्वयोश्चिह्नयोः संलग्नाः समानाः [रेखाः] कार्याः । स्वमार्गवर्धमानयोस्तयो रेखयोर्यत्र संपातो भवति तत्र केन्द्रं कृत्वा मकरादिवृत्तत्रयगतचिह्नोपरि यथा पतति तथा वृत्तं कार्यम् । तद्विषमहोरावलयं भवति । एवमेव समहोरावलयनिष्पादनविधिः । तत्र पूर्वापरसूत्रान्मकरादिवृत्तत्रयाणां द्वादश भागाः । शेषं पूर्ववत् ।

अथ भपत्ररचनाप्रकारः[12] ।

तत्राक्षपत्रापेक्षया एकं पत्रं दले द्विगुणितं कार्यम् । तस्मिन् पत्रे मकरादिवृत्तत्रयं पूर्वोक्तप्रकारेण[13] विधाय मकरवृत्तं भगणांशाङ्कितं कृत्वा मकरवृत्तगतपश्चिमदिक्चिह्नात् प्रत्यंशसंबन्धिनो लङ्कोदयांशान् विगणय्य चिह्नानि कार्याणि । ततो दक्षिणदिक्चिह्नाद् याम्योत्तररेखामकरवृत्तसंपातात् उत्तरदिक्स्थं कर्कवृत्तयाम्योत्तर-

---

१. 'तत्रैव कोट्यंशवशतो' पुण्य. २ 'क्षेत्र' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ३ 'स्व' इति पुण्यपुस्तके नास्ति । ४. पुण्य. पुस्तके होरानिष्पादनप्रकारो भपत्ररचनोत्तरं वर्तते । ५. 'द्विधा' पुण्य. ६. 'अपरा' पुण्य. ७. 'तत्र दिनमानसंख्याया द्वादश विभागाः तथैव रात्रिमानस्यापि द्वादश भागास्ते विभागाः स्वस्वमानवशेन न्यूनाधिका अतो विषमाः ।' पुण्य. ८. 'तन्निष्पादनप्रकारः' पुण्य. ९. 'मकरनाडीकर्कवृत्तानां' पुण्य. १०. 'कर्कटकस्य' पुण्य. ११. 'ये' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । १२. 'प्रकारः' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । १३. 'प्रकारे' पुण्य.

रेखासंपातावधि यावद् रेखाखण्डं[1] तस्यार्धे केन्द्रं कृत्वा अर्धमितेन कर्कटकेन[2] वृत्तं कार्यम् । तत्क्रान्तिवृत्तं भवति । ध्रुवस्थाने सूत्रस्यैकाग्रं धृत्वा तदेव सूत्रं मकरवृत्तगत-लङ्कोदयांशेषु भ्राम्यमाणं सत् क्रान्तिवृत्ते यत्र यत्र लगति तत्र तत्र चिह्नानि कार्याणि । त एव क्रान्तिवृत्तस्य भागा[3] भवन्ति ।

अथ गणितेन क्रान्तिवृत्तव्यासानयनम्[4] ।

नाडीवृत्तव्यासार्धवर्गः[5] कल्पितमकराहोरात्रवृत्तव्यासार्धेन भाज्यः । फलं मकराहोरात्रवृत्तव्यासार्धे योज्यं क्रान्तिवृत्तव्यासो भवति । तदर्धं च केन्द्रं भवति ।

अत्रोपपत्तिः कर्काहोरात्रवृत्तव्यासार्धवत् ।

अथ भपत्रे नक्षत्रस्थापनम् ।

आदौ नक्षत्रध्रुवकेभ्यः[6] स्पष्टां[7] क्रान्तिमायनदृक्कर्म च प्रसाध्य यस्य[8] नक्षत्रस्य यावत्संख्याकाः स्पष्टक्रान्त्यंशा उत्तरा[9] दक्षिणा वा तावतोंऽशान्[10] नाडीवृत्तगतपूर्वचिह्नात्[11] पश्चिमचिह्नाद्वा यथादिशमुत्तरतो दक्षिणतो वा विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । अथ[12] नाडीवृत्तगतदक्षिणचिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरं कृत्वा द्वितीयाग्रं तत्कृतचिह्ने स्थिरं कार्यम् । तत्सूत्रं पूर्वापररेखायां यत्र लग्नं तत्र चिह्नं कार्यम् । मकरवृत्तकेन्द्राच्चिह्नं यावत्तन्मित-व्यासार्धेन ध्रुवकेन्द्रकं वृत्तं कार्यम् । तन्नक्षत्रस्याहोरात्रवृत्तं भवति । तथा तन्नक्षत्र[13]-स्यायनदृक्कर्मसंस्कृतविभागः[14] क्रान्तिवृत्ते[15] यस्मिन् राशौ पतति तत्र चिह्नं कार्यम् । ततो ध्रुवस्थाने सूत्राग्रं धृत्वा तदेव सूत्रमायनदृक्कर्मसंस्कृतभागे[16] स्थापितं सत् कृता-होरात्रवृत्ते यत्र लगति तत्र तस्य नक्षत्रस्य चञ्चुस्थानं ज्ञेयम् । अथवा षट्षष्टिमिताक्षांशसंबन्धीनि[17] क्षितिजाद्युन्नतवलयानि दिग्वलयानि[18] च कार्याणि । तत्र क्षितिजं क्रान्तिवृत्तं ज्ञेयम् । तस्य विभागाः पूर्ववदेव[19] कार्याः । दिग्वलयानि[20] कदम्बसूत्राणि भवन्ति । उन्नतवलयानि शरकोटिवलयानि भवन्ति । अथ यस्य नक्षत्रस्य ध्रुवको यद्राश्यंशेऽस्ति तदंशसंबन्धिनि[21] कदम्बवृत्ते तस्य नक्षत्रस्य शरांशा उत्तरा दक्षिणा वा देयाः । तत्रैव तस्य नक्षत्रस्य चञ्चुस्थानं ज्ञेयम् । तत्र चञ्चुर्यथेच्छया विचित्रा कार्या । किंचित्तदर्थमाधारपत्रं स्थाप्यम् । शेषपत्रमभ्यन्तरतः[22] संच्छेद्यम् ।

[23]इति श्रीमहाराजसवाईजयसिंहकृतासु कारिकासु यन्त्रराजघटनावृत्तनिष्पादनं च प्रथमाध्यायः ।

---

१. 'याम्योत्तररेखाखण्डं' पुण्य. २. 'कर्कटेन' पुण्य. ३. 'विभागा' पुण्य. ४. 'क्रान्तिवृत्तस्य केन्द्र-व्यासानयनम्' पुण्य. ५. 'नाडीवृत्तव्यासार्ध°' इत्यारभ्य 'अत्रोपपत्तिः कर्काहोरात्रव्यासार्धवत्' इत्यन्तः पाठः पुण्य. पुस्तके नास्ति । ६. 'ध्रुवकेभ्योऽत्र' पुण्य. ७. स्पष्टक्रान्तिमायन°' पुण्य. ८. 'यस्य' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ९. 'उत्तरा वा दक्षिणा' पुण्य. १०. 'तावन्तोंशा' पुण्य. ११. 'नाडीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । पुण्य. १२. 'अथ नाडीवृत्त°' इत्यारभ्य 'तन्नक्षत्रस्याहोरात्रवृत्तं भवति' इत्यन्तः पाठः पुण्य. पुस्तके नास्ति । १३. 'तस्य नक्षत्रस्य' पुण्य. १४. 'विभागो हि' पुण्य. १५. 'क्रान्तिर्यस्मिन्' पुण्य. १६. संस्कृतभागस्थापितं' पुण्य. १७. 'संबन्धिनि' पुण्य. १८. 'दिग्वलयानि' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । १९. 'पूर्ववत् कार्याः' पुण्य. २०. 'दिग्वृत्तानि' पुण्य. २१. 'संबन्धिकदम्बवृत्ते' पुण्य. २२. 'अभ्यन्तरे' पुण्य. २३. 'इति यन्त्रराजघटना वृत्तनिष्काशनं च' पुण्य. पुस्तके ।

अथ वेधविधिर्लिख्यते ।

तं[1]त्रादौ मण्डलमध्यगं देवं नत्वा गुरुं प्रणम्य रवेर्नतांशज्ञानार्थं दक्षिणहस्तेन यन्त्रराजकिरीटस्थरज्जुं गृहीत्वा यन्त्रपृष्ठस्थवेधपट्टयग्रं सूर्याभिमुखं कृत्वा यथा वेधपट्टीगतभुजस्थछिद्रयोरर्कतेजो विशेत्तथा पट्टयग्रं चालयेत् । एवं कृ[2]ते यन्त्रपृष्ठस्थपूर्वापरसूत्राद् वेधपट्टयग्रं यावत्त एव रवेरुन्नतांशा ज्ञेयाः । तथा यन्त्रपृष्ठस्थयाम्योत्तरसूत्राद् वेधपट्टयग्रपर्यन्तं रवेर्नतांशा ज्ञेयाः ।

अथ रात्रौ ग्रहाणां नक्षत्राणां च नतोन्नतांशा[3]नां वेधः ।

स यथा—आदौ यन्त्रकिरीटस्थरज्जुं कस्मिंश्चिदाधारे बद्ध्वा दक्षिणाक्षि संमील्य वामनेत्रेण यन्त्रपृष्ठस्थवेधपट्टीगतभुजयोश्छिद्रयुगे ग्रहो नक्षत्रं योगतारा वा यथा दृश्यते तथा वेधपट्टयग्रं चालयेत् । अत्रापि पूर्वापरसूत्रात् पट्टयग्रपर्यन्तं ग्रहस्य योगतारायाश्चोन्नतांशाः, याम्योत्तरसूत्रात् पट्टयग्रपर्यन्तं नतांशाश्च ज्ञेयाः । एवं नतांशोन्नतांशज्ञाने सति पू[4]र्वापरकपालस्योन्नतांशज्ञानम् ।

तद् यथा—यस्मिन् सम[5]ये उन्नतांशा विद्धास्ततो घटिकानन्तरं पुनरुन्नतांशा वेध्यास्ते यदि पूर्वविद्धोन्नतांशापेक्षयाधिकास्तदा ग्र[6]हो नक्षत्रं वा पूर्वदिक्[7]स्थं ज्ञेयम् । हीनाश्चेत्पश्चि[8]मदिशि ज्ञेयम् ।

अथ उन्नतांशेभ्य इष्टकालानयनम् ।

तद् यथा—आदौ रविसंबन्धिराश्यादिसायनं(नो) विभागं(गः) क्रान्तिवृत्तेऽङ्कनीयम्(यः) । त[9]द्विभागं पूर्वाह्णे पूर्वक्षितिजे, अपराह्णे पश्चिमक्षितिजे [10]निवेश्य मकरास्यं पालौ[11] यत्र लगति तत्र चिह्नं कार्यम् । पुनस्तद्ग्र्यंशमिष्टोन्नतवलयस्पृक् कार्यम् । तत्रापि मृगस्याङ्कनं च कार्यम् । एवं मकरास्यचिह्नद्वयगतांशास्ते पञ्चदशभिर्भाज्याः । यल्लभ्यते ताः सार्धद्वयघटीप्रमाणिका होराः सूर्योदयाद्गता भवन्ति । ताः सार्धद्वयेन गुण्यास्तावन्त्य (त्यः ?) एव सूर्योदयाद्गतघटिका भवन्ति । अथवा मकरास्यचिह्नद्वयगतायेंशास्ते षड्भिर्भाज्या लब्धिमिताः सूर्योदयाद्ग[12]ता नाडिका भवन्ति ।

अथ रा[13]त्रौ नक्षत्रोपरि विद्धोन्नतांशेभ्यो रात्रिगतैष्यानयनम् ।

अ[14]थादावस्त[15]कालिकरविसंबन्धिराश्यादिभागं पश्चिमक्षितिजे निवेश्य मकर(रा ?)स्याङ्कनं कार्यम् पश्चाद् यस्य नक्षत्रस्योन्नतांशा[16] यावत्संख्या आगतास्तावत्युन्नतवलये

---

१. 'तत्रादौ' इत्यारभ्य 'रवेर्नतांशज्ञानार्थं' इत्यन्तस्य पाठस्य स्थाने पुण्य. पुस्तके 'तत्रादौ रवेर्नतांशवेधः स यथा—दक्षिणहस्तेन' इत्यदिर्वर्तते पाठः । २. 'कृते सति' पुण्य. ३. 'नतोन्नतांशवेधः' पुण्य. ४. 'पूर्वापरज्ञानम्' पुण्य. ५. 'काले' पुण्य. ६. 'तदा तं ग्रहं' पुण्य. ७. 'पूर्वस्यां दिशि' पुण्य. ८. 'पश्चिमस्यां दिशि' पुण्य. ९. 'द्विभागं' पुण्य. १०. '०क्षितिजे च' पुण्य. ११. 'पाल्यां' पुण्य. १२. 'गतघटिका' पुण्य. १३. 'रात्रे' पुण्य. १४. 'अथ' इति नास्ति पुण्य. १५. 'अस्तकालीन' पुण्य. १६. इतोऽग्रे '(वेध्याः–)' इत्यादि पाठः ।

तन्नक्षत्रचञ्चुं निवेश्य मकरस्याङ्कनं[1] कार्यम् । एवं मकरास्यचिह्नद्वयान्तर्गता[2] येंशास्ते [3]षड्भिर्भाज्या लब्धमिताः सूर्यास्ताद्गतघटिका भवन्ति । एवमुदयकालीनरविसंबन्धि-राश्यादिभागं पूर्वक्षितिजे निवेश्य मकरास्याङ्कनं कार्यम् । पूर्वकृतनक्षत्रसंबन्धिमृगा-स्यचिह्नादेतच्चिह्नपर्यन्तं येंशास्ते षड्भिर्भाज्याः । लब्धमिता रात्रिशेषघटिका भवन्ति । (पश्चाद् यस्य नक्षत्रस्योन्नतांशा वेध्यास्तस्य नक्षत्रस्य चञ्चुः कपालवशात् पूर्वापरक्षितिजे निवेश्य मकरस्याङ्कनं च कार्यम् । एवं मकरास्यचिह्नद्वयप्रमाणिका होराः । अंशाः षड्भक्ता यल्लभ्यते ताः सूर्यनक्षत्रान्तर्गता नाडिका भवन्ति । ता अनष्टाः स्थाप्याः । पुनः पूर्वोक्तप्रकारेण तं नक्षत्रं वेधयित्वोन्नतांशा ज्ञेयाः । पश्चाद् यस्य नक्षत्रस्योन्नतांशा यावत्संख्याका आगतास्तावत्युन्नतवलये तस्य नक्षत्रस्य चञ्चुं निवेश्य मकरास्याङ्कनं कार्यम् । एवं नक्षत्रस्पृक्क्षितिजमकरास्याङ्कनात्रधि यावदंशास्ते षड्भिर्भाज्याः यल्लब्धं ता नक्षत्रोन्नतनाडिका ज्ञेयाः । आभिः पृथक्स्था हीनाः कार्याः । ता रात्रिगतैष्या घटिका भवन्ति । अर्धास्तोदयाद्गताऽगताः घटिका भवन्ति ।)

अथ दिनरात्रिहोरानयनम् ।

प्रातःकालिकसायनरविसंबन्धिराश्यादिभागं पूर्वक्षितिजे निवेश्य मकरास्याङ्कनं कार्यम् । पश्चाद् यस्य नक्षत्रस्योन्नतांशा वेध्यास्तस्य नक्षत्रस्य चञ्चुं कपालवशात् पूर्वापर-क्षितिजे निवेश्य मकरास्याङ्कनं कार्यम् । एवं मकरास्याङ्कद्वयगता येंशास्ते पञ्चदशभि-र्भाज्या या लब्धास्ता रविनक्षत्रान्तर्गता होरा भवन्ति । ता अनष्टाः स्थाप्याः । पुनः पूर्वोक्तप्रकारेण तंन(तन्न ?)क्षत्रं वेधयित्वा उन्नतांशा ज्ञेयाः । पश्चाद् यस्य नक्षत्रस्यो-न्नतांशा यावत्संख्याका आगतास्तावत्युन्नतवलये तस्य नक्षत्रस्य चञ्चुं निवेश्य मकरा-स्याङ्कनं कार्यम् । एवं नक्षत्रस्पृक्मकरास्याङ्कनावधि यावदंशास्ते पञ्चदशभिर्भक्ताः फलं होरा ज्ञेयाः । आभिः पृथक्स्थाः पूर्वापरकपालयोर्युता हीनाः कार्याः । अवशिष्टाः सूर्याधोदयाद्गता होरा भवन्ति । ताश्चतुर्विंशतेः शोध्याः । शेषमिता रात्रेर्गता होरा भवन्ति ।

अथ दिवसस्य गतैष्यकालाल्लग्नानयनम् ।

[4]तात्कालिकसायनांशरव्यंशमिष्टोन्नतवलयस्पृग्यथा भवति तथा भ्राम्यमाणे भमण्डले सति पूर्वक्षितिजे भमण्डलस्य योंशो लगति तदेव राश्यादिकं[5] तात्कालिकं सायनलग्नं भवति[6] । एवं[7] पश्चिमक्षितिजे सप्तमं लग्नम् । ऊर्ध्वाधररेखायां दशमचतुर्थे

१. 'मकरास्याङ्कनं' पुण्य. २. 'मकरास्याऽङ्कद्वय' पुण्य. ३. 'पञ्चभिर्भाज्यां यल्लभ्यते ताः सार्धघटी-द्वयप्रमाणिका दिवसस्य होरा भवन्ति । ताश्चतुर्विंशतेः शोध्या शेषमिता रात्रौ होरा भवन्ति । स्वस्वहोराः सार्धद्वितयेन गुण्या[ः] स्वस्वमानं घट्यादिकं भवति' पुण्य. पुस्तके । ४. 'तत्कालीन' पुण्य. ५. 'राश्यादितत्का-लि(ली ?)नं सायनलग्नं भवति' पुण्य. ६. 'तदयनांशैः संस्कार्यं अभीष्टं लग्नं भवति' पुण्य. पुस्तकेऽधिकः पाठः । ७. 'एवं पश्चिमक्षितिजे' इत्यारभ्य 'तदाभीष्टानि भवन्ति' इतिपर्यन्तं पाठो पुण्य. पुस्तके नास्ति ।

लग्ने स्तः । तान्ययनांशैः संस्कार्याणि तदाभीष्टानि भवन्ति । एवं रात्रौ भमण्डले स्थापितानां नक्षत्राणां मध्ये यस्योन्नतांशा वेधेन यावत्संख्याका आगतास्तावत्युन्नतवलये तस्य[1] नक्षत्रस्य चञ्च्वां धृतायां पूर्वक्षितिजे क्रान्तिवृत्तस्य यो भागो[2] लगति तदेव रात्रौ[3] सायनं लग्नं भवति । अत्राप्ययनांशैः [4]संस्कारः कार्यः ।

अथ दिवसे लग्नांशे[5] ज्ञाते सति तात्कालिक[6]रविसंबन्ध्युन्नतांशज्ञानम् ।

यावत्कालसंबन्धि यल्लग्नांशज्ञानं तदंशं पूर्वक्षितिजे निवेश्य तत्कालिकरव्यंशं क्षितिजाद्यावन्मित उन्नतवलये स्पृष्टं तावन्तः सूर्योन्नतांशा ज्ञेयाः । यदि रव्यंशं (शः ?) पूर्वापरक्षितिजयोः पतति तदा क्रमेणोदयास्तकालौ ज्ञेयौ । अथ रव्यंशः पूर्वापरक्षितिजादधःस्थो भवति तदा क्रमेण रात्रिशेषगतकालौ ज्ञेयौ ।

अथ[7] रात्रिशेषगतकालानयनम् ।

तद् यथा—यदा रव्यंशः पूर्वापरक्षितिजाद् यावत्संख्ये होरावलये स्थितः, तावत्यो होरा एष्या[8] गता वा ज्ञेयाः । ताभ्यो घटीज्ञानं पूर्ववत् ।

एवं रात्रौ लग्नांशज्ञाने सति भपत्रगतनक्षत्राणामन्यतमनक्षत्रस्योन्नतांशज्ञानम् । ज्ञातलग्नांशं पूर्वक्षितिजे निवेश्योन्नतवलयेषु यथा चञ्च्वग्रं क्षितिजाद् यावत्संख्ये उन्नतवलये लग्नं तावत्संख्योन्नतांशास्तन्नक्षत्रस्य यदा वेधे[9]नागमिष्यन्ति तस्मिन् काले ज्ञातं[10]लग्नं पूर्वक्षितिजे आयाति । अतो[11] रात्रिगतैष्यानयनं पूर्ववदेव । अथवा ज्ञातलग्नांशं पूर्वक्षितिजे निवेश्य तत्संबन्धि यस्य नक्षत्रस्योन्नतांशा[12]स्तस्य[13] चञ्चुर्ज्ञातोन्नतांशवलये[14] स्थाप्यो[15] । तदवसरे[16] तात्कालिक[17]रविसंबन्धिर्भागो[18] यावत्संख्ये[19] होरावलये लग्नस्तावन्त्यो[20] होराः सूर्यास्ताद्गता भवन्ति । ताभ्यो घटीज्ञानं पूर्ववत् । अन्यो[21] वेधविधिः स्पष्ट एव प्रसिद्धः ॥

अथ सर्वदेशोपकारि[22]यन्त्रराजवेधविधिर्लिख्यते ।

तत्रादौ क्रान्तिज्ञाने[23] तत्संबन्धिरव्यंशज्ञानम् । यावत्संख्याकाः क्रान्त्यंशा उत्तरे[24] दक्षिणा वा तदंशै[25]संबन्धि अहोरात्रवृत्तानि ग्राह्याणि । तेष्विष्टांशसंबन्ध्यहोरात्रवृत्तं यद्राशे[26]र्लग्नं स एव स्पष्टरव्यंशो राश्यादिकः सायनः । स एव रव्यंशो यदि दिनमानं वर्धमानं तदा मकरादौ ज्ञेयः । हीयमानं तदा कर्क्यादौ ।

---

१. 'तावत्युन्नतवलये नक्षत्रचञ्चौ धृते सति' । पुण्य. २. 'विभागो' पुण्य. ३. 'तत्कालीनं सायनलग्नं' पुण्य. ४. 'अत्राप्ययनांशसंस्कारः । पुण्य. ५. 'लग्नांशज्ञाने सति' ६. 'तत्कालीन' पुण्य. 'यल्लग्नं क्षितिजाद् यावद्यु(त्यु ?)न्नतवले(वलये ?)स्पष्टं तावन्तः सूर्यस्योन्नतांशा ज्ञेयाः' पुण्य. ७. 'अथ' इति नास्ति पुण्य. पुस्तके ८. 'एष्या वा गता' पुण्य. ९. 'यदा वेधो(धे ?)नागमिष्यन्ति' पुण्य. १०. 'ज्ञातलग्नांशः' पुण्य. ११. 'अतो' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । १२. 'नतांशा विद्धाः' पुण्य. १३. 'तस्य नक्षत्रस्य' पुण्य. १४. 'ज्ञानोन्नतांशवल' पुण्य. १५. 'स्थाप्यम्' । पुण्य. १६. 'तदे(द ?)वसरे' पुण्य. १७. 'तत्कालीन' पुण्य. १८. 'विभागो' पुण्य. १९. 'यावत्संख्याहोरावलये' पुण्य. २०. 'तावन्त्यो' पुण्य. २१. 'अन्ये (न्यो?)' पुण्य. २२. '°पकारी' पुण्य. २३. 'क्रान्तिज्ञाने सति' पुण्य. २४. 'उत्तरा वा दक्षिणा' पुण्य. २५. 'स्वदेशसंबन्धीनि' पुण्य. २६. 'अहोरात्रवृत्ते क्रान्तिवृत्ते यद्राश्यंशो' पुण्य.

क्रान्तिज्ञाने सति प्रकारान्तरेण रव्यंशज्ञानम् ।

तद् यथा—याम्योत्तरवृत्तं नाडीवृत्तं प्रकल्प्य तस्य व्यासार्धे[1] नवत्यंशान् कृत्वा नाडीवृत्तपालितः केन्द्राभिमुखं तस्मिन्नेव व्यासार्धे परमक्रान्तिभागान् विगणय्य तदंशसंबन्धि ध्रुववृत्तं तदेव क्रान्तिवृत्तं प्रकल्प्य तत्र ध्रुवस्थाने[2] मेषतुलासंपातौ[3] ज्ञेयौ । कल्पितनाडीवृत्तस्य केन्द्रं ध्रुवस्थाने ज्ञेयम् । पट्टीरूपं[4] क्षितिजं तदेव ध्रुववृत्तं प्रकल्प्य अभीष्टक्रान्त्यंशान्नवतेर्विशोध्य शेषं कोट्यंशा ज्ञेयाः । तान् कल्पितध्रुवस्थानगते पट्टीरूपे[5] ध्रुववृत्ते ध्रुवाद्विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । तच्चिह्नं कल्पितक्रान्तिवृत्ते यथा लगति तथा पट्टी भ्रामणीया । एवं कल्पितक्रान्तिवृत्तपट्टीगतचिह्नयोः संपाते यावदंशसंबन्ध्यहोरात्रवृत्तं लग्नं तावत्संख्याकांशाः सूर्यस्य भुजकोट्यंशा ज्ञेयाः । यदि क्रान्त्यंशा[6] उत्तरा[7] वर्धमानास्तदा कोट्यंशान्नवतेर्विशोध्य शेषं भुजांशाः । स एव राश्यादिको रविः । यद्युत्तराः क्रान्त्यंशा हीयमानास्तदा कोट्यंशा नवतौ योज्य(ज्याः ?)स एव राश्यादिकः सूर्यः । यदि क्रान्त्यंशा दक्षिणा वर्धमानास्तदा कोट्यंशान् सप्तत्यधिकशतद्वयात्[8] संशोध्य स[9] एव राश्यादिको रविः । यदि क्रान्त्यंशा दक्षिणा हीयमानास्तदा कोट्यंशान् सप्तत्यधिकशतद्वये[10] प्रक्षिप्य स एव राश्यादिको रविः ॥

अथ तृतीयप्रकारेण ज्ञाता[11]ज्ञातक्रान्त्यंशे रविज्ञानम् ।

यन्त्रपृष्ठस्थवेधपट्टीं[12] निरक्षीययाम्योत्तररेखायां संस्थाप्य वेधपट्ट्युदरवर्तिनी यान्या पट्टी तां याम्योत्तरवृत्ते नाडीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा[13] ज्ञातक्रान्त्यंशेषु संस्थाप्य पुनः क्रान्त्यंशा[14] उत्तरास्तदा परमक्रान्तिभागान् उत्तरतो विगणय्य चिह्नं कार्यम् । तस्मिन् चिह्ने उत्तर[15](उदर?)गतवेधपट्टीसमीपगतं वेधयष्ट्यग्रं स्थाप्यं तदा ज्ञातक्रान्तिभागा हीयमानाः । यदा च ज्ञातक्रान्तिभागा वर्धमानास्तदा[16] उत्तर(उदर)गता(त) पट्टीतो [दूरवर्ति] यद्वेधपट्ट्यग्रं तत्पर[17]क्रान्तिभागचिह्ने स्थाप्यम् । एवं स्थापितायां वेधपट्ट्यां उत्त(द?)रवर्तिवेधपट्टी[18] नाडीवृत्ते स्थाप्या । पुनर्नाडीवृत्तगतचिह्नवेधपट्टी[19]संयोगे उत्त(द)रवर्तिनीं पट्टीमानीय इयं पट्टी याम्योत्तरवृत्ते यत्र लग्ना तत्र चिह्नं कार्यम् । नाडीवृत्ताच्चिह्नावधि येंशास्ते यदि दिनमानं वर्धमानं तदा सप्तत्यधिकशतद्वये योज्याः । हीयमानं तदा नवतौ योज्याः । स एव राश्यादिको रविः सायनः ।

अथ रविज्ञाने सति क्रान्तिज्ञानम् ।

इष्टं[20]कालिकसायनरव्यंशः क्रान्तिवृत्तेऽङ्कनीयः । तस्मिन्नंशे यावदंशसंबन्धि ध्रुववृत्तं समं[21] (लग्नं ?) तावन्तः क्रान्त्यंशाः ।

---

१. 'व्यासार्धेन' पुण्य. २. 'ध्रुवस्थानं ज्ञेयम्' पुण्य. ३. 'मेषतुलासंपातौ' इत्यारभ्य 'ध्रुवस्थाने ज्ञेयम् । इत्यन्तं पाठः पुण्य. पुस्तके नास्ति । ४. 'घटीरूपं' पुण्य. ५. 'घटीरूपे' पुण्य. ६. 'ज्ञातक्रान्त्यंशा' पुण्य. ७. 'उत्तरा वर्धमानाः' इत्यारभ्य 'राश्यादिकः सूर्यः' इत्यन्तः पाठः पुण्य. पुस्तके नास्ति । ८. 'शतद्विसंख्याया विशोध्य' पुण्य. ९. 'शेषं' पुण्य. १०. 'शतद्वये च' पुण्य. ११. 'ज्ञातक्रान्त्यंशे' पुण्य. १२. 'वेधपट्टी' पुण्य. १३. 'वा' इति नास्ति पुण्य. पुस्तके. १४. 'ज्ञातक्रान्त्यंशो उत्तरतः' पुण्य. १५. 'उदरगत' पुण्य. १६. 'तदोदरगतपट्टीतो' पुण्य. १७. 'तं परम' पुण्य. १८. 'उदरवर्ती' पुण्य. १९. 'वेधसंयोगि' पुण्य. २०. 'इष्टकालीन' पुण्य. २१. 'लग्नं' पुण्य.

प्रकारान्तरम् ।

इष्ट[1]कालिकसायनसूर्यस्य कोट्यंशसंख्यानि अहोरात्रवृत्तानि नाडीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा सायनसूर्यराशिवशतो ग्राह्याणि । पुनः परक्रान्तिभागसंबन्धि ध्रुववृत्तं पूर्वगृहीतकोट्यंशसंबन्धिन्यहोरात्रवृत्ते यत्र लग्नं तत्र वेधपट्टी स्थाप्या । तस्याः संपातस्थानाद् याम्योत्तरवृत्तावधि येंशास्ते क्रान्त्यंशा ज्ञेयाः । तेषां सौम्यत्वं याम्यत्वं च सूर्याधिष्ठित[2]राशितो ज्ञेयम् ।

तृतीय[3]प्रकारः ।

तात्[4]कालिकसायनरविकोट्यंशान् यन्त्रपृष्ठस्थिते याम्योत्तरवृत्ते ऊर्ध्वाधरसूत्राद्विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । ततो[5] वेधपट्टीं नाडीवृत्ते संस्थाप्य वेधपट्ट्युदरवर्तिन्यपरपट्टी विगणितकोटिभागाग्रे संस्थाप्या । सा नाडीवृत्ते यत्र लग्ना तत्र चिह्नं कार्यम् । पुनर्वेधपट्टीं[6] परमक्रान्तिभागाग्रे संस्थाप्य तदुर्दरस्थिता[7] पट्टी नाडीवृत्तगतचिह्नं[8] यथा स्पृशति तथा चालनीया । पुनर्वेधपट्टी नाडीवृत्तस्य पूर्वापरसूत्रे स्थापिता[9] सती तदुदरवर्तिनी[10] या पट्टी सा याम्योत्तरवृत्ते यत्र लगति ततो नाडीवृत्तपर्यन्तं येंशास्ते क्रान्त्यंशा[11] ज्ञेयाः ।

अथ दिनार्धानयनम् ।

तत्रादौ याम्योत्तरवृत्ते[12] नाडीवृत्तसंपातादुत्तरदिश्यभीष्टलम्बांशान् विगणय्य तत्र चिह्नं कार्यम् । तस्मिन् चिह्ने क्षितिजसंज्ञ[13](ज्ञि ?)कां वेधपट्टीं[14] संस्थाप्य तस्यामभीष्टक्रान्तिवृत्तसंबन्ध्यहोरात्रवृत्तं यत्र लग्नं तत्रैव यदंशसंबन्धिध्रुववृत्तं लग्नं तावदेव दिनार्ध[15]क्षेत्रांशाः । ते षड्भिर्भाज्या घट्यादि दिनार्धं भवति । तस्मादेव संपातात् निरक्षक्षितिजावधि येंशास्ते चरांशाः[16] । ते षड्भिर्भाज्या घट्यादि चरं स्यात् ।

अथ नक्षत्रोन्नतकालानयनम्[17] ।

उदरवर्ति[18]वेधपट्टीसहिता वेधपट्टी[19] निरक्षयाम्योत्तररेखायां स्थाप्या । ततो वेधेन यावत्संख्याका उन्नतांशा आगतास्ते नाडीवृत्तादुत्तरतो विगणय्य तत्र[20] चिह्नं कार्यम् । तच्चिह्नमुदरवर्तिनी[21] पट्टी यथा स्पृशति तथा स्थाप्या । पुनर्वेधपट्टी लम्बांशाग्रे स्थापिता सती अभीष्टक्रान्तिभागसंबन्ध्य[22]होरात्रे यत्र लगति तत्र यावदंशसंबन्धिध्रुववृत्तं तन्नाडीवृत्ते यत्र लग्नं[23] तत्र चिह्नं कार्यम् । पुनर्वेधपट्टी नाडीवृत्ते स्थाप्या । तदुदरवर्तिनीं[24]

---

१. 'इष्टकालीन' पुण्य. २. 'सूर्याधिष्ठित' इत्यन्त एव पाठः पुण्य. पुस्तके ३. 'तृतीयप्रकारः' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ४. 'मेषादि तु कोट्यंशान्' पुण्य. ५. 'ततो वेधपट्टीं' इत्यारभ्य 'तत्र चिह्नं कार्यम्' इत्यन्तः पाठः पुण्य. पुस्तके नास्ति । ६. 'पुनर्वेधपट्टी' पुण्य. ७. 'तदुत्तरस्थिता' पुण्य. ८. 'नाडी' पुण्य. पुस्तके नास्ति । ९. 'संस्थापितः' पुण्य. पुस्तके. १०. 'तदुदरवर्ती या पट्टी' पुण्य. पुस्तके. ११. 'क्रान्त्यंशा वा' पुण्य. १२. 'याम्योत्तरवृत्तसंपाताद्' पुण्य. १३. 'क्षितिजसंज्ञिकाम्' पुण्य. १४. 'वेधपट्टी संस्थाप्या' पुण्य. १५. 'दिनार्धस्य' पुण्य. १६. 'तेंशा चिह्नांशाः षड्भिर्भाज्याश्चरं स्यात्' पुण्य. १७. 'नतोन्नतकालानयनम्' पुण्य. १८. 'उदरवर्ती' पुण्य. १९. 'वेधपट्टी सा' पुण्य. २०. 'तत्र' इति नास्ति पुण्य. पुस्तके. २१. 'उदरवर्ती' पुण्य. २२. 'संबन्ध्यहोरात्रवृत्ते' पुण्य. २३. 'लग्नं' पुण्य. २४. 'तदुदरवर्तिनां(नीं ?)' पुण्य.

पट्टीं च[1] तच्चिह्ने धृत्वा याम्योत्तरवृत्ते उदरवर्तिनी[2] पट्टी यत्र लग्ना तस्मान्नाडीवृत्तपर्यन्तं येंशास्ते नतकालांशाः षड्भिर्भाज्या[ः][3]तदा नतकालो भवति । स नतकालो यद्युन्नतांशाः[4] पूर्वकपाले तदा दिनार्धतः शोध्याः । पश्चिमतश्चेत्तदा[5] योज्याः शेषः सूर्योदयाद्गतकालो भवति ।

अथ[6] नतकाले ज्ञाते सत्युन्नतांशज्ञानम् ।

ज्ञात[7]नतकालः षड्गुण[8]ः कार्यः । नतकालांशा भवन्ति । ते नाडीवृत्तादुत्तरदिशि ज्ञेयाः[9] । तत्र चिह्नं कार्यम् । ततो वेधपट्टी नाडीवृत्ते स्थाप्या । तदु[10]दर[11]वर्तिनी पट्टी च नतकालांशचिह्ने स्थापिता सती नाडीवृत्ते यत्र लग्ना तत्र यावदंशसंबन्धि ध्रुववृत्तमिष्टाहोरात्रवृत्ते यत्र लग्नं तत्र चिह्नं कार्यम् । पुनर्वेधपट्टी लम्बांशाग्रे स्थापनीया । तदुदरवर्तिनी[12] पट्टी याम्योत्तरवृत्ते यत्र लग्ना ततो नाडीवृत्तावधि येंशास्ते उन्नतांशा ज्ञेयाः ॥

अथाग्रानयनम् ।

क्षितिजसंज्ञकां वेधपट्टीं लम्बांशाग्रे संस्थाप्य इष्टकालिक[13]रविक्रान्तिभागसंबन्ध्यहोरात्रवृत्तं क्षितिजे यत्र लग्नं ततः केन्द्रावधि येंशास्ते अग्रांशा[14]ः । यदा यस्य कस्यचिद्ग्रहस्याग्रांशा अपेक्षितास्तस्य स्पष्टक्रान्त्यंशा ग्राह्याः । शेषं पूर्ववत् ।

अथ निरक्षविषुवांशज्ञानम् ।

यावदंशसंबन्धिनो विषुवांशा अपेक्षितास्तेषु सप्तत्यधिकशतद्वयाधिकेषु[15] सप्तत्यधिकशतद्वयं शोध्यम्[16] । शेषं मकरादितोंऽशाः स्युः । यद्यभीष्टांशाः सप्तत्यधिकशतद्व[17]योनास्तदा तेषु नवतिभागाः क्षेप्याः । तेऽपि मकरादितोंऽशाः स्युः । ते[18] क्रान्तिवृत्ते मकरादितः स्थाप्याः । तत्र चिह्नं कार्यम् । तच्चिह्ने यावदंशसंबन्धि ध्रुववृत्तं लग्नं तावन्तोंशा मकरादितो विषुवांशाः स्युः । ते यदि खाङ्केभ्यो न्यूनाधिकास्तदा तेषु सप्तत्यधिकशतद्वयं खाङ्काश्च क्रमेण क्षेप्याः शोधनीयाश्च । एवमेवं[19] यत्क्षेप्यम् त एव मेषादितो विषुवांशाः स्युः ।

एवं निरक्षे[20] विषुवांशा ज्ञातास्तेभ्यो लग्नानयनम् ।

इष्टविषुवांशा यदि सप्त[21]त्यधिकशतद्व[22]याधिका न्यूना वा तदा तेषु क्रमेण सप्तत्यधिकशतद्वयं नवतिश्च ऋणं धनं कार्यम् । शेषं मकरादितो विषुवांशाः स्युः[23] । तदंशसबन्धि ध्रुववृत्तं ग्राह्यम् । तद् ध्रुववृत्तं क्रान्तिवृत्ते यद्राश्यंशे लग्नं तदेव राश्यादिकं सायनलग्नं भवति ।

---

१. 'चिह्ने चिह्ने' पुण्य. २. 'उदरवर्ती' पुण्य. ३. 'तदा' इति नास्ति पुण्य. पुस्तके । ४. 'यद्युन्नतांशाः' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ५. तदा' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ६. 'अथ' इति नास्ति पुण्य. पुस्तके । ७. 'यातनतकालतः' पुण्य. ८. षड्गुणे नतकालांशा' पुण्य. ९. 'देया' पुण्य. १०. 'तद्' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ११. 'उदरवर्ती' पुण्य. १२. 'पट्टी तस्मिन् चिह्ने स्थाप्या पुनर्वेधपट्टी निरक्षयाम्योत्तर रेखायां धृता-सती तदुदरवर्तिनी पट्टी याम्योत्तरवृत्ते यत्र लग्ना ततो नाडीवृत्तावधि येंशास्ते उन्नतांशा ज्ञेयाः' पुण्य. १३. 'इष्टकालीन' पुण्य. १४. 'अंशाः' पुण्य. १५. '°धिकेषु चेत्' पुण्य. १६. 'विशोध्यम्' पुण्य. १७. 'शतद्वयतो' पुण्य. १८. 'तेंशा' पुण्य. १९. 'एवं यच्छेषं त एव' पुण्य. २०. 'निरक्षविषुवांशाः' पुण्य. २१. 'सप्तत्यधिक' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । २२. 'शतद्वयतो' पुण्य. २३. 'भवन्ति' पुण्य.

अथ स्वदेशे विषुवांशानयनम् ।

आदौ क्रान्तिवृत्ते मकरादिराशिस्थाने मेषादयोऽङ्कनीयाः । ततो यावदंशसंबन्धिविषुवांशा अपेक्षितास्तावन्तोंशाः कल्पितमेषादेर्विगणय्य चिह्नं कार्यम् । तच्चिह्ने यात्र(य)त्कदम्ववृत्तं संलग्नं तस्मिन् कदम्ववृत्ते अभीष्टाक्षांशसंवन्ध्यहोरात्रवृत्तं यत्र लग्नं तत्र यावत्यं(दं?)शसंबन्धिध्रुववृत्तं लग्नं तावन्तो विषुवांशा मेषादितो ज्ञेयाः । एवं विषुवांशेभ्यो लग्नानयनम् । यावन्तो विषुवांशास्तत्संवन्धिध्रुववृत्ते अभीष्टाक्षांशसवन्ध्यहोरात्रवृत्तं यत्र लग्नं तत्र यत्कदम्ववृत्तं तत्क्रान्तिवृत्ते यत्रांशे लग्नं तत्र चिह्नं कार्यम् । ततः क्रान्तिवृत्ते मकरादिस्थाने मेषाद्यङ्कनीयम् । ततः कल्पितमेषाद्यारभ्य पूर्वचिह्नं यद्राश्यंशे पतितं तदेव राश्यादि सायनं लग्नं भवति ।

अथ नक्षत्रस्थापनम् ।

अभीष्टनक्षत्रस्य राश्यादिको विभागः । क्रान्तिवृत्ते मेषादितोऽङ्कनीयः । तत्र चिह्नं कार्यम् । तच्चिह्ने यत्कदम्ववृत्तं पतितं तस्मिन् कदम्ववृत्ते गृहीतनक्षत्रस्य शरांशा उत्तराश्चेदुत्तरदिशि दक्षिणाश्चेद्दक्षिणदिशि विगणय्य तत्र गृहीतनक्षत्रस्य स्थापनं कार्यमिति दिक् ॥

॥ इति श्रीमन्महाराजाधिराजश्रीसवाईजयसिंहकृता
यन्त्रराजरचना वेधक्रिया च समाप्ता ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीनाथद्विजविरचिता

यन्त्रप्रभा

नत्वा श्रीगणनायकं रविमुखान् खेटांस्तथा श्रीगुरून्,
छागाणीति पदप्रसिद्धनिपुणः श्रीनाथसंज्ञो द्विजः ।
कुर्वे श्रीजयसिंहराजरचिताद् ग्रन्थात् सुयन्त्रक्रियां,
सुश्लोकैर्विदुषां मुदेऽतिविमलां यन्त्रप्रभाख्यामिमाम् ॥ १ ॥

---

१. 'मेषाद्विगणय्य' पुण्य.

१. 'यत्रांशे' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । २. 'ततः' इति पुण्य. पुस्तके नास्ति । ३. 'विभागे हि' पुण्य. ४. 'गृहीत्वा' पुण्य. ५. 'तन्नक्षत्रस्य' पुण्य. ६. 'तन्नक्षत्रस्य शरांशाश्चेदुत्तरदिक्कास्तदोत्तरदिशि' पुण्य. ७. 'श्चेत्तदा' पुण्य.

१. 'इति श्रीमन्महाराजाधिराजराजेश्वरधुन्धुमारदेशाधिपति सपादजयसिंहकारिता यन्त्रराजरचनोपपत्तिवेधक्रिया समाप्ता । शुभं भवतु ।' पुण्य. पुस्तके.

आदौ यन्त्रं धातुजं दारुजं वा स्वेच्छाव्यासेनान्वितं वर्तुलं च ।
कृत्वा मध्ये केन्द्रमापालिवृत्तं तस्मात्तद्वै खाङ्कनाड्यङ्कितं च ॥ २ ॥
तस्मादर्द्धाङ्गुलेनान्तरितमिह पुनर्वृत्तयुग्मं तथोर्द्ध्वात्
तिर्यक् चान्या च रेखा खरसगुणमितांशास्तु वृत्ते विलेख्याः ।
ऊर्द्ध्वाग्रे याम्यसौम्यौ गणकजनवरैः प्राक्प्रतीच्यौ द्वितीया-
ग्रे सम्यग् लेखनीये भवति मृगमुखं वृत्तमेतत्तु सौम्ये ॥ ३ ॥
याम्ये तु कर्काख्यमिदं वदन्ति मिश्रे तु मिश्रं यमदिग्वराङ्गम् ।
याम्याग्रतः पश्चिमभागमध्ये परापरांशान् विगणय्य तत्र ॥ ४ ॥
सूत्रस्यैकाग्रं [सु]स्थिरं कार्यमस्मात् प्राच्यां नेयं तद्द्वितीयाग्रमेतत् ।
मध्यस्थायां रेखिकायां विलग्नं चिह्नं तस्मिन् करणी(ल्पनी)यं सुधीभिः ॥ ५ ॥
ध्रुवतश्चिह्नपर्यन्तं नाडीवृत्तं समादिशेत् ।
नाडीवृत्तात्तु कर्काख्यं नाडीवृत्तविधानवत् ॥ ६ ॥
सूत्रस्यैकाग्रं च ध्रुवस्थं विधायान्याग्रं वै भ्राम्यमाणं मृगाख्ये ।
स्वाभीष्टांशे यत्र लग्नं तुलाख्ये तत्रैवांशास्ते विधेयाः सुधीभिः ॥ ७ ॥
नाडीवृत्ते पश्चिमादुत्तरे ते ज्ञेयाः सम्यक् स्वाक्षभागाश्च चिह्नम् ।
कृत्वा तस्मात्पूर्वगं सूत्रमेतन्मध्यस्थायां यत्र लग्नं तदङ्कयम् ॥ ८ ॥
तद्वत्पूर्वाक्षांशचिह्नं तु याम्ये कृत्वा पूर्वाचिह्नमार्गेण सूत्रम् ।
देयं प्राज्ञैर्मध्यरेखाविलग्नं यत्र स्याद्वै तत्र चिह्नं द्वितीयम् ॥ ९ ॥
मध्यस्थरेखास्थितचिह्नयोर्यन्मानं तदर्धेन च कर्कटेन ।
तस्यां तदर्धप्रमिताच्च केन्द्राद्वृत्तं लिखेत्तत् क्षितिजं वदन्ति ॥ १० ॥
पश्चिमाद्यत्कृतं चिह्नं तत्रांशान् स्वेच्छया त्यजेत् ।
पूर्वस्मात्कृतचिह्ने तान् योजयेद्गणकोत्तमः ॥ ११ ॥
आभ्यां तु मध्यरेखायां चिह्नमुत्पाद्य पूर्ववत् ।
ताभ्यां पूर्वोक्तवद्वृत्तं तदुन्नतसमाह्वयम् ॥ १२ ॥
एवं त्रिपड्द्व्येकशरादिभागैर्वृत्तानि तान्युन्नतनामकानि ।
याम्याग्ररेखाक्रियवृत्तयोर्यत्संपातमस्मादिहं नाडिकाख्ये ॥ १३ ॥
पराक्षभागान् विगणय्य तस्मात्सूत्रं नयेत् प्राचि तदेव सूत्रम् ।
याम्योत्तरायां खलु यत्र लग्नं तत्राङ्कनीयं पुनरुत्तरस्याम् ॥ १४ ॥
संपाततः पश्चिमदिग्विभागे पराक्षभागान् विगणय्य चिह्नम् ।
विधाय सूत्रं परतो हि नेयं तदूर्ध्वमार्गेण सुवर्द्धमानम् ॥ १५ ॥
याम्योत्तरायां खलु यत्र लग्नं तच्चाङ्कनीयं पुनरङ्कयोर्यत् ।
मानं तदर्द्धेन विधाय केन्द्रं वृत्तं लिखेन्मध्यमरेखिकायाम् ॥ १६ ॥

टी॰ 'यः संपातस्तोऽस्मादिह' इति भाष्यम् ।

समाह्वयं तत्प्रवदन्ति तस्मिन् पूर्वापराख्यां रचयेच्च रेखाम् ।
याम्योत्तरां वृत्तयुतौ तु विद्याद् याम्ये विभागे विबुधैः खमध्यम् ॥ १७ ॥
अधःस्वस्तिकं सौम्यभागे च तद्वत् खमध्यात्तु प्रत्यंशगे नाडिवृत्ते ।
ध्रुवं संस्पृशेत्सूत्रमत्राङ्कनीयं समाख्ये तु पूर्वापरारेखिकायाम् ॥ १८ ॥
तथाकेन्द्रकं कल्पनीयं सुधीभिरधःस्वस्तिकं खं क्षितेश्चिह्नमेतद् ।
त्रयं संस्पृशेत्तादृशं वृत्तमस्माद्विधेयं दिशो वृत्तमेतद्वदन्ति ॥ १९ ॥

मृगमेषकुलीराणामधःस्थानां क्षितेः समाः ।
रविभागाः प्रकर्तव्या यथा वृत्तत्रयेऽपि तत् ॥ २० ॥
भागचिह्नं स्पृशेत्सम्यक् तथा वृत्तं समालिखेत् ।
होरावृत्तमिदं ज्ञेयमक्षपत्रे स्वदेशजे ॥ २१ ॥
अक्षपत्रात्पृथक् चैकं पत्रं कार्यं विचक्षणैः ।
मृगादिवृत्तत्रितयं तस्मिन् पत्रेऽपि पूर्ववत् ॥ २२ ॥
कर्तव्यं मृगवृत्तं तु भांशैश्चाङ्क्यं प्रयत्नतः ।
मृगादेः कर्कव्यासान्तं क्रान्तिवृत्तं समालिखेत् ॥ २३ ॥

आदौ मृगाख्ये करणं विधाय लङ्कास्थमानैरथ मेषपूर्वैः ।
विलेखनीया हरिदिग्विलोमास्ते वै भचक्रे क्रमशोऽभिनेयाः ॥ २४ ॥

भानां घट्यादि यत्प्रोक्तं स्पष्टं पूर्वमतानुगैः ।
तन्मृगाख्ये समालेख्यं भघट्यङ्कमृगाह्वयम् ॥ २५ ॥

नक्षत्रघट्यादिमृगास्यवृत्ताद्रेखा विधेया ध्रुवगा ध्रुवाच्च ।
स्पष्टा यमाख्येन च वृत्तमेतद्रेखां स्पृशेत्तत्र तदास्यमुक्तम् ॥ २६ ॥
भस्य क्रान्तिलवाः स्फुटा निगदिता याम्या ह्युदक्संभवा-
स्ते देयाः परपूर्वतो निजदिशा तन्नाडिकाख्ये बुधैः ।
चिह्नं तत्र विधाय मेषवणिजोर्याम्याच्च सूत्रं नये-
च्चिह्ने प्राक्परगा स्पृशेदिह भवेद्यंत्रे स्फुटा क्रान्ति सा (१) ॥ २७ ॥
यन्त्रस्य पृष्ठे खलु पूर्वरीत्या प्राच्यादयश्चापि विलेखनीयाः ।
भुजोऽपि वेदार्थमिहोन्नतांशा ऐन्द्र्यास्तु याम्यं खखगैश्च तुल्याः ॥ २८ ॥
यन्त्रागमे यन्त्रविधानरीतिः सुनिर्मिता केशवसूनुनेयम् ।
श्रीसद्गुरूणां कृपया बुधानां मुदे द्विषां दण्डविधानहेतोः ॥ २९ ॥

॥ इति यन्त्ररचनाध्यायः ॥

*

१ 'स्फुटः सोऽपमः' इत्युचितम् ।

॥ श्रीः ॥

केदारनाथज्योतिर्विद्रचिता

यन्त्रराजप्रभा

श्रीयन्त्रराजरचनाप्रकारपूर्तौ प्रभानाम्नी ।
सोदाहरणा टीका गणकानामस्तु संतुष्ट्यै ॥ १ ॥

खगोलीयज्योतिःपिण्डानां गतिस्थितिज्ञानार्थं यन्त्राणामुपयोगः। तत्र यन्त्रराजाभिधं यन्त्रं सर्वथोपयुक्तम्। एतद्यन्त्रद्वारा सूर्यवेधे प्रथमं कालज्ञानम्, सूर्यक्रान्तिज्ञानम्, क्रान्तिद्वारा च स्पष्टसूर्यज्ञानम्, अक्षांशनिश्चयः, सूर्यस्योन्नतांशदिगंशज्ञानम्, लग्नज्ञानम्, द्वादशभावज्ञानम्, तथैव च रात्रौ ग्रहस्पष्टीकरणम्, नक्षत्रवेधद्वारा रात्रीष्टज्ञानम्, इत्यादयः सर्वेऽपि समावश्यका ज्योतिर्गणितोपयोगिनः पदार्थाः सरलतया ज्ञातुं सुशकाः। यन्त्रमन्तरा न कथमपि ज्योतिष्मतां खस्थानां ग्रहनक्षत्राणां वेधो भवति। अनेकविधयन्त्राणां चक्र-तुरीयादीनां सत्त्वेऽपि केवलं गोलयन्त्रम्, तन्मूलकं यन्त्रराजाभिधं यन्त्रं च सर्वाङ्गसंपूर्णं ज्योतिर्गणिते सर्वथा समुपयुक्तम्। गोलयन्त्रमेव, चिपिटाकारेण परिणतं यन्त्रराजाभिधां धत्त इति नाविदितं सिद्धान्तविदां गाणितिकानाम्। यन्त्रराजाभिधं यन्त्रं प्रथमप्रथमं हिपार्कसनाम्ना ग्रीकदेशीयेन ज्योतिर्विदा अवरखसनाम्ना (ख्रिष्टाब्दतः पूर्वं तृतीयशताब्द्याम्) प्रसिद्धेनाविष्कृतम्। ततश्चाधुनिककालसूचकघटीयन्त्रवत् सर्वदेशेषु तदानीं प्रचलितमधुनापि सर्वत्र समुपलभ्यते। यन्त्रस्यास्य रचनाप्रकारो वेधविधिश्च ग्रन्थेऽस्मिन् सरलतया प्रतिपादितौ समुपलभ्येते। यन्त्रराजाभिधयन्त्रस्यास्य केन्द्रं ध्रुवस्थानम्। ध्रुवं केन्द्रमारभ्य मकरवृत्तावधि गोलस्थवृत्तानामत्र संनिवेशः। तद्रचनाप्रकारो यथा—आदावभीष्टं यन्त्रं धातुजमिति। यावता परिमाणेन यन्त्रमेतच्चिकीर्षितं तावता परिमाणेन स्वच्छं समतलं धातुमयं काष्ठमयं वा पत्रं वर्तुलं ग्राह्यम्। तदनुरूपं समन्तादायुष्यरूपं कियन्तं चिद्भागं संरक्ष्य वृत्तमेकं प्रथमं कार्यम्। यन्त्रस्यास्य केन्द्रं ध्रुवस्थानमिति केन्द्रं ध्रुवसंज्ञया व्यवहर्तव्यम्। यथा प्रथमपरिलेखे (क्षे. १) पूदपउवृत्तं मकरवृत्तम् ऊर्ध्वाधररेखाग्रयोः दक्षिणोदक्चिह्नेऽङ्कनीये। केन्द्रगतायास्तिर्यग्रेखायाश्च द्वयोरग्रयोर्वामदिशि पूर्वदिक्चिह्नमथ तत्संमुखे पश्चिमाचिह्नं च कर्तव्यम्। वृत्तमेतत् ३६० अंशानां चतुर्थांशरूपैर्नवत्यंशैः प्रत्येकदिक्चिह्नात् प्रतिचतुर्भागमङ्कनीयम्। पूर्वातो दक्षिणां दिशं प्रत्येवमेव पश्चिमातोऽपि दक्षिणदिग्दिशि नवतिरंशानामङ्क्या। एवं १८० अंशा यन्त्रोर्ध्वभागे तथैव पूर्वापरचिह्नाभ्यामुत्तरां प्रति नवतिर्नवतिरंशानामङ्कनीया। एवं भांशाङ्कनं भवेत्।

(पृ० १ पं० ११) अथ दक्षिणदिशः सकाशादिति। विषुववृत्तनिष्पादनाय दक्षिणदिक्चिह्नमारभ्य परमक्रान्त्यंशान् विगणय्य चिह्नं कार्यम्। अथवाधुना सर्वत्र सुलभमंशैरङ्कितं वृत्तार्धखण्डं ग्राह्यम्। यन्त्रकेन्द्रे तत्केन्द्रं सावधानतया पूर्वापररेखोपरि संस्थाप्य शिरोबिन्दोः परमक्रान्त्यंशान् (वर्तमाने काले २३° अंशाः ९' कलाः ३४" विकलाश्च वेधोपलब्धपरमक्रान्तेरंशाः) परिगण्य मकरवृत्ताभिधे प्रथमवृत्ते केन्द्रगतसूत्राग्रे चिह्नं करणीयम्।

(पृ० १ पं० १२) तत्र चिह्ने इति। परमक्रान्तिचिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं निधाय तत्सूत्रं पूर्वदिक्चिह्नाग्रे नेयम्। एवं पूर्वातः परमक्रान्त्यंशचिह्नावधि यन्त्रधरातलं स्पृशत् तद् गाढमाकृष्टमूर्ध्वाधरां दक्षिणोदग्रेखां यत्र स्पृशति तत्रैकं चिह्नं विधेयम्। यन्त्रकेन्द्राद् दक्षिणोदग्रेखास्यतच्चिह्नावधि व्यासार्धं मत्त्वा कर्कोटकेन वृत्तमारचनीयम्। तद्विषुववृत्ताख्यं वृत्तं स्यात्। ततश्चास्मिन् विषुववृत्ते यन्त्रकेन्द्रात् परमक्रान्त्यंशाग्रे मकरवृत्ते नीयमानं सूत्रं यत्र विषुववृत्ते संलग्नं स्यात् त एव विषुववृत्ते परमक्रान्त्यंशाः। तच्चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं धृत्वा विषुववृत्तीयपूर्वापराभिधरेखायाः पूर्वचिह्ने द्वितीयाग्रं पूर्ववत् संस्थाप्यम्। तत्सूत्रं पुनर्दक्षिणोदग्रेखायां यत्र संलग्नं तत्रापि चिह्नं कृत्वा कर्कोटकेन यन्त्रकेन्द्रात्तच्चिह्नावधि व्यासार्धं प्रकल्प्य वृत्तं कर्तव्यम्। तत् कर्काख्यं वृत्तं स्यात्। एवमक्षपत्रोपरि मकर-विषुव-कर्काभिधं वृत्तत्रयं समङ्कितं भवेत्।

(पृ० १ पं० २२) अथ गणितेनेति। मकराहोरात्रादिवृत्तानां व्यासार्धानयनायानुपातस्तत्र प्रथमं विषुववृत्तस्य गणितेन व्यासार्धानयनायानुपातः। यथा चिकीर्षितयन्त्रराजस्य मकरवृत्तव्यासार्धं द्वादशाङ्गुलपरिमाणं प्रकल्पितं चेत् तदाङ्गुलात्मकं विषुववृत्तव्यासार्धं कियदङ्गुलपरिमाणकं भवेदिति जिज्ञासायां प्रथमं परमक्रान्तिं (२३°१९′३४″) नवतेर्विशोध्य जाताः परमक्रान्तिकोट्यंशाः ६६°।५०′२६″ एतेषामुत्क्रमज्या (६० त्रिज्यायां) (२१५९)। उत्क्रमज्यायां कल्पितमकरवृत्तव्यासार्धेनाङ्गुलात्मकेन १२ अङ्गुलात्मकेन गुणितायां जाताः (२५९०८) परात्पद्युज्यया भागे लब्धं विषुववृत्तव्यासार्धमानमङ्गुलात्मकम्।

$$\text{एकमेव विषुवव्यासार्धम्} = \frac{\text{परात्पद्युज्या} \times (\text{मकराहोरात्रवृत्तव्यासार्द्ध} = १२)}{(\text{द्विगुणितत्रिज्या} - \text{पर. क्रा. कोट्युत्क्रमज्या})}$$

$$\text{अथवा नाडीवृत्तव्यासार्धम्} = \frac{\text{परात्पद्युज्या} \times (\text{मकरा. व्यासार्ध} = १२)}{\text{२ त्रि.} - \text{परमक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्या।}}$$

(पृ० २ पं० ४) अत्रोपपत्तिरिति। यन्त्रराजाक्षपत्रे यथा परमक्रान्तिभागा अङ्कितास्तथैवान्यत् मकराहोरात्रवृत्तमालिख्य तत्रापि मकराहोरात्रवत्क्रान्तिभागाः प्रथममङ्क्याः—तांश्च नवतितो विशोध्य क्रान्तिकोट्यंशा ज्ञेयाः। अथ परमक्रान्तिचिह्नादूर्ध्वाधरव्यासरेखोपरि लम्बनिपातात् परमक्रान्तिभुजज्या, पूर्वापरव्यासरेखोपरि लम्बनिपातात् कोटिज्या, अत्र कोट्यंशाः किल परमक्रान्तिचिह्नात् मकराहोरात्रवृत्तीयपश्चिमचिह्नावधि वर्त्तन्त इति तत्पर्यन्तं पूर्णज्या समङ्क्या।

अत्रानुपातः—

$$\frac{\text{प. क्रां. कोट्युत्क्रमज्या} \times \text{मकरव्यासार्द्ध} = १२}{\text{प. क्रां. कोटिज्या}}$$

अथवा

$$\text{विषुवव्यासार्द्ध} = \frac{\text{कोटिक्रमज्या} \times (\text{मकरव्यास} = १२)}{\text{उत्क्रमज्योनमकरव्यासकोटौ}}$$

प्रथमप्रकारः

$$\text{विषुवव्यासार्ध} = \frac{\text{प. क्रा. कोट्युत्क्रमज्या} \times \text{म. व्यासार्ध} = १२}{\text{प. क्रान्तिकोटिक्रमज्या}}$$

वा

$$\text{विषुवव्यासार्ध} = \frac{\text{परमक्रान्तिकोटिज्या} \times \text{म. व्यासार्ध}}{\text{२ त्रि.—प. क्रान्तिकोट्युत्क्रमज्या}}$$

एवं द्वितीयप्रकारः ।

(पृ० २ पं० २६) अथ गणितेन कर्काहोरात्रवृत्तस्येति ।

$$\text{कर्काहोरात्रव्यासार्धमानम्} = \frac{\text{परमक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्या} \times \text{विषुवव्यासार्ध}}{\text{परमक्रान्तिकोटिज्या}}$$

यद्वा—

$$\text{कर्कव्यासार्ध} = \frac{\text{परमक्रान्तिकोटिज्या} \times \text{विषुवव्यासार्ध}}{\text{२ त्रि—परमक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्या}}$$

वा

$$\frac{\text{विषुवव्यासार्धवर्गः}}{\text{मकराहोरात्रव्यासार्धवर्गः}}$$

वा २

$$\frac{\text{परमक्रा. को.}}{\text{परमक्रान्तिज्या}} \times \text{मकरव्यासार्ध}$$

६०

एवं कर्काहोरात्रव्यासार्धं प्रकारचतुष्टयेन गणितेनायाति ।

कर्काहोरात्रव्यासार्धाद् विषुवमकराहोरात्रव्यासार्धानयनं गुणकहरयोर्व्यत्यासे विलोमविधिना स्यात् ।

(पृ० ३ पं० १०) अत्रोपपत्तिरिति ।

$$\text{प्रथमप्रकारः} = \frac{\text{परमक्रान्तिज्या} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्ध} = १२}{\text{परमक्रान्तिकोटिज्या}}$$

$$\text{यद्वा} = \frac{\text{परमक्रान्तिकोटिज्या} \times (\text{ नाडीवृत्तव्यासार्ध} = १२)}{\text{२ त्रि—परमक्रान्तिकोट्युत्क्रमज्या}}$$

$$\text{वा तृतीयः प्रकारः} = \frac{\text{नाडीवृत्तव्यासार्ध} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्ध}}{\text{मकरवृत्तव्यासार्ध} = १२}$$

(पृ० ३ पं० २०) अथ क्षितिजवृत्तनिष्पादनप्रकार इति । अक्षपत्रोपरि यन्त्रनाडीवृत्तस्थं पश्चिमदिक्चिह्नं तत आरभ्योत्तरदिशि स्वामीष्टाक्षांशाः समङ्क्याः । चिह्नादस्मान्नाडीवृत्तीयपूर्वदिक्-चिह्नापर्यन्तं सूत्रं संस्थाप्य तत्सूत्रमूर्ध्वाधररेखायां यत्र संपातं करोति तच्चिह्नं प्रथमसंज्ञम् । एवमेव नाडीवृत्तीयपूर्वदिक्चिह्नान्नाडीवृत्तस्योपरि दक्षिणाभिमुखमक्षांशाः परिगणनीयाः । पुनश्च

नाडीवृत्तीयपूर्वदिक्चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं धृत्वा तदेवं सूत्रं परिगणिताक्षांशचिह्नोपरि नीयमानं स्वमार्गे वर्धमानमूर्ध्वाधरां रेखां यत्र स्पृशति तत्र द्वितीयसंज्ञं चिह्नं कार्यम् । एवं प्रथमसंज्ञद्वितीयसंज्ञ-चिह्नयोरर्धभागे दक्षिणोदग्रेखोपरि केन्द्रं कृत्वा नाडीवृत्तीयपूर्वापरचिह्नयोः संपातं कुर्वद् वृत्तमा-रचनीयम् । तदेवाभीष्टस्थानीयं क्षितिजवृत्तं भवति ।

(पृ० ४ पं० ५) अथ गणितेन क्षितिजकेन्द्रमिति । एकं विषुववृत्तपरिमाणकं वृत्तं कृत्वा अक्षांशानां क्रमोत्क्रमज्ये समङ्कनीये । ततश्च–

$$(१)\ \frac{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्धम्}}{\text{अक्षांशजीवा}}$$

$$(२)\ \frac{\text{अक्षांशज्या} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्धम्}}{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}}$$

प्रथमद्वितीयफलयोर्योगः क्षितिजवृत्तव्यासार्धमानं भवति ।

$$\text{यद्वा } (१) = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्धम् ।}}{२\ \text{त्रिज्या} - \text{अक्षोत्क्रमज्या}}$$

$$(२)\ \frac{२\ \text{त्रिज्या} - \text{अक्षोत्क्रमज्या}}{\text{अक्षज्या}}$$

एतयोः प्रथमद्वितीयफलयोर्योगोऽपि क्षितिजव्यासार्धमानं भवति ।

(पृ० ५ पं० २०) अथेति । यन्त्रराजस्य केन्द्रं ध्रुवस्थानम् । ततः क्षितिजावधि ऊर्ध्वा-धरव्यासरेखायां यदन्तरं तदानयनम् । क्षितिजव्यासार्धमानानयने अभीष्टाक्षांशोत्क्रमज्या नाडी-वृत्तव्यासार्धमानेन गुणिता अक्षांशज्यया भाजिता प्रथमफलमिति नाम्ना सिद्धम् । तेन प्रथमफलेन क्षितिजव्यासार्धमूनितं ध्रुवात् क्षितिजकेन्द्रमानं भवति ।

अत्रोपपत्तिरिति । तत्र क्षेत्रम् ।

$$(१)\ \text{प्रथमफलम्} = \frac{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्धम्}}{\text{अक्षज्या}}$$

$$(२)\ \text{द्वितीयफलम्} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्धम्}}{\text{अक्षोत्क्रमज्या}}$$

क्षितिजव्यासमानम् = प्रथमफलं + द्वितीयफलम्

क्षितिजस्य ध्रुवात् केन्द्रमानम् अथवा प्रथमक्षेत्रेऽनुपातः–

$$\text{प्रथमफलम्} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्धम्}}{२\ \text{त्रि.} - \text{अक्षांशोत्क्रमज्या}}$$

द्वितीयक्षेत्रेऽनुपातः–

$$\text{द्वितीयफलम्} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{नाडीवृत्तव्यासार्धम्}}{\text{अक्षांशोत्क्रमज्या}}$$

प्रथमद्वितीयफलयोर्योगार्धे क्षितिजव्यासार्धम्, ध्रुवात् केन्द्रान्तरं च भवतः।

(पृ० ५ पं० २१) उन्नतवलयनिष्पादनप्रकारः–यथा क्षितिजवृत्तरचनार्थं दक्षिणोत्तर-रेखायां प्रथमद्वितीयसंज्ञकचिह्ने संपादिते तथैव प्रत्येकोन्नतवलयनिष्पादने प्रथमद्वितीयसंज्ञकचिह्ने प्रथमं संसाध्ये। तयोश्चिह्नयोरर्धे केन्द्रं कृत्वा चिह्नान्तरार्धमितत्रिज्यया यद्वृत्तं निष्पद्यते तदेवोन्नतं वलयमिति परिभाषा।

प्रत्येकोन्नतवलयकेन्द्रसाधनार्थं प्रथमसंज्ञद्वितीयसंज्ञचिह्ने कथं संसाध्ये तत्प्रकारो यथा–

क्षितिजवृत्तनिष्पादने नाडीवृत्तस्थ पूर्वदिक्चिह्नाद्दक्षिणदिश्यभीष्टाक्षांशचिह्नं यत् स्थिरीकृतं तच्चिह्नसमक्षे षड्भान्तरितस्थाने यत् चिह्नं ततः एकद्व्याद्युन्नतांशवलयसंबन्धिचिह्नानि नाडीवृत्तोपरि कार्याणि। ततश्च नाडीवृत्तीयपूर्वदिक्स्थाने सूत्रस्यैकाग्रं दृढीकृत्य द्वितीयाग्रं तत्तदुन्नतांशचिह्नोपरि नीयमानं यत्र दक्षिणोत्तररेखायां संपतति तत् तत्तदुन्नतांशवलयसंबन्धि प्रथमचिह्नम्। एवं नाडीवृत्तीयपूर्वदिक्चिह्नात् परिगणिताक्षांशसंबन्धिचिह्नात् एकद्व्याद्यंशान दक्षिणदिशि परिगण्य चिह्नानि कार्याणि। पूर्वदिक्चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरीकृत्य दत्ताक्षभागसंबन्धिचिह्नादग्रे एकद्व्याद्यंशान् दत्त्वा यानि तत्तदुन्नतवलयसंबन्धिचिह्नानि कृतानि तच्चिह्नस्पृक्सूत्रं दक्षिणोत्तरायामूर्ध्वाधररेखायां यत्र संपतितं तदेव द्वितीयसंज्ञं चिह्नम्। अथ प्रथमद्वितीयसंज्ञयोश्चिह्नयोरन्तरार्धे केन्द्रम्। केन्द्रात् प्रथमद्वितीयचिह्नगतं यद्वृत्तं तदेव क्षितिजसमानान्तरमुन्नतवलयं भवतीति निष्कर्षः।

(पृ० ६ पं० ५) अथ गणितेनोन्नतवलयनिष्पादनप्रकारः–

(१) अक्षांश + उन्नतांश

(२) अक्षांश – उन्नतांश

$$१\ फलम् = \frac{\text{उत्क्रमज्या (अक्षांश – उन्नतांश)} \times \text{विषुवव्यासार्ध}}{\text{क्रमज्या (अक्षांश – उन्नतांश)}}$$

$$२\ फलम् = \frac{\text{उत्क्रमज्या (अक्षांश + उन्नतांश)} \times \text{विषुवव्यासार्ध}}{\text{क्रमज्या (अक्षांश + उन्नतांश)}}$$

$$३\ फलम् = \frac{\text{क्रमज्या (अक्षांश + उन्नतांश)} \times \text{विषुवव्यासार्ध}}{\text{उत्क्रमज्या (अक्षांश + उन्नतांश)}}$$

उन्नतवलयस्य व्यासः = १ फल + २ फल + ३ फलम्। केन्द्रम् = फलयोगार्धे

अथवा

$$१\ फलम् = \frac{\text{ज्या (अक्षांश + उन्नतांश)} \times \text{विषु.व्यासार्धं}}{\text{द्विगुणत्रिज्या–उत्क्र. ज्या (अक्षांश + उन्नतांश)}}$$

$$२\ फलम् = \frac{\text{२ त्रिज्या–उत्क्रमज्या (अक्षांश + उन्नतांश)} \times \text{विषुवव्यासार्ध}}{\text{ज्या (अक्षांश + उन्नतांश)}}$$

उन्नतवलयव्यासः = १ फलं + २ फलम्। योगार्धे केन्द्रम्।

समवृत्तनिष्पादनप्रकारः-

(पृ० ६ पं० १६) प्रथमं दक्षिणदिक्स्थिताद् विषुववृत्तयाम्योत्तररेखासंपातात् पश्चिमदिशि स्वीयाभीष्टांशान् विगणय्य चिह्नं कार्यम् । तस्मिन् चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरं कृत्वा द्वितीयाग्रं नाडीवृत्तीयपूर्वदिक्चिह्ने नेयम् । तत् सूत्रं याम्योत्तररेखयोर्ध्वाधरया यत्र संपातं करोति तत्स्थानं खस्वस्तिकम् । एवमेवोत्तरदिक्स्थनाडीवृत्तयाम्योत्तररेखासंपातचिह्नात् पश्चिमदिश्येवाक्षांशान् परिगण्य चिह्नं विधेयम् । तस्मिन् चिह्ने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरीकृत्य तत्सूत्रं नाडीवृत्तीयपश्चिमदिक्चिह्ने नेयम् । सूत्रमेतद् ऊर्ध्वाधरया याम्योत्तररेखया यत्र योगं विदधाति तदेव स्थानमधःस्वस्तिकाख्यं ज्ञेयम् ।

खस्वस्तिकादधःस्वस्तिकावधि याम्योदग्रेखाया यावान् भागस्तत्सार्धे केन्द्रं कृत्वा स्वस्तिकोभयगतं वृत्तं विधेयम् । तत् समवृत्तं भवति ।

(पृ० ७ पं० २) गणितेन समवृत्तव्यासार्धानयनम् ।

लम्बांशाः= ९०°—अक्षांशाः ।

$$१\ \text{फलम्} = \frac{\text{लम्बांशोत्क्रमज्या} \times \text{विषुवव्यासार्धम्}}{\text{लम्बांशज्या}}$$

$$२\ \text{फलम्} = \frac{\text{लम्बांशज्या} \times \text{विषुवव्यासार्धम्}}{\text{लम्बांशोत्क्रमज्या}}$$

समवृत्तव्यासः = १ फलम् + २ फलम् ।

अथवा

$$१\ \text{फलम्} = \frac{\text{लम्बांशज्या} \times \text{विषुवव्यासार्धम्}}{२\ \text{त्रिज्या} - \text{लम्बांशोत्क्रमज्या}}$$

$$२\ \text{फलम्} = \frac{२\ \text{त्रिज्या} - \text{लम्बांशोत्क्रमज्या}}{\text{लम्बांशज्या}}$$

समवृत्तव्यासः = १ फलं + २ फलम् ।

तदर्धं समवृत्तव्यासार्धप्रमाणम् । तदनुसारि खमध्यादुत्तरदिशि याम्योत्तररेखायां तदीयं केन्द्रम् ।

$$\text{ध्रुवाद्}\ \text{खमध्यम्} = \frac{\text{लम्बांशोत्क्रमज्या} \times \text{विषुवव्यासार्धम्}}{\text{लम्बज्या}}$$

गणितागतसमवृत्तव्यासार्धमाने उपपत्तिः ।

$$१\ \text{फलम्} = \frac{\text{लम्बांशोत्क्रमज्या} \times \text{विषु.व्यासार्धम्}}{\text{लम्बज्या}}$$

$$२\ \text{फलम्} = \frac{\text{लम्बज्या} \times \text{विषुवव्यासाधम्}}{\text{लम्बांशोत्क्रमज्या}}$$

प्रथमद्वितीयफलयोर्योगः=समवृत्तव्यासमानम् । तदर्धे केन्द्रम्

अथवा

$$१ \text{ फलम्} = \frac{\text{लम्बज्या} \times \text{विषुवव्यासार्धम्}}{२ \text{ त्रि}-\text{लम्बांशोत्क्रमज्या}}$$

$$२ \text{ फलम्} = \frac{२ \text{ त्रि}-\text{लम्बांशोत्क्रमज्या} \times \text{विषुवव्यासार्धम्}}{\text{लम्बज्या}}$$

$$\text{समवृत्तव्यासः} = \frac{१ \text{ फलम्} + २ \text{ फलम्}}{२}$$

दिग्वलयरचनाप्रकारः–

(पृ० ८ पं० ९) यन्त्रराजीयपूर्वापररेखासमानान्तरा समवृत्ते पूर्वापरा रेखा पृथक् कार्या। खस्वस्तिके सूत्रस्यैकाग्रं धृत्वा नाडीवलयप्रत्यंशे तत् सूत्रं पूर्वचिह्नादारभ्य यत्र यत्र क्षितिजे लग्नं तत्र तत्र चिह्नं कार्यम्। ततः खस्वस्तिकाधःस्वस्तिकयोः क्षितिजप्रत्यंशे च गतं समवृत्तीयपूर्वापर-रेखागतकेन्द्रात् कृतं वृत्तं दिग्वलयं स्यात्।

(पृ० ८ पं० १५) गणितेन दिग्वलयव्यासानयनम्–

दिगंशकोट्यंशाः = ९० - गंशाः।

$$१ \text{ फलम्} = \frac{\text{दिगंशकोट्युत्क्रमज्या} \times \text{समवृत्तव्यासार्धम्}}{\text{दिगंशकोटिज्या}}$$

$$२ \text{ फलम्} = \frac{२ \text{ त्रि}-\text{दिगंशकोट्युत्क्रमज्या} \times \text{समवृत्तव्यासः}}{\text{दिगंशकोटिज्या}}$$

दिग्वलयव्यासः = १ फलम् + २ फलम्।

$$\text{दिग्वलयकेन्द्रम्} = \frac{\text{प्रथमफलम्} + \text{द्वितीयफलम्}}{२}$$

स्वमध्यचिह्नात् दिग्वृत्तव्यासार्धमानेन पूर्वापररेखायां (समवृत्तीयायां) चिह्नं कार्यम्। तदेव दिग्वृत्तस्य केन्द्रं भवति। ततः खस्वस्तिकाधःस्वस्तिकगतं तेनैव व्यासार्धेन कृतं वृत्तं दिग्वलयं भवति। एवमन्यानि दिग्वलयानि खस्वस्तिकाधःस्वस्तिकगतानि क्षितिजे च प्रत्यंशं गतानि कार्याणि तानि दिगंशवृत्तानीति निष्कर्षः।

अथवा

$$१ \text{ फलम्} = \frac{\text{दिगंशकोटिज्या} \times \text{समवृत्तव्यासार्धम्}}{२ \text{ त्रि}-\text{ दिगंशकोट्युत्क्रमज्या}}$$

$$२ \text{ फलम्} = \frac{\text{दिगंशकोटिज्या} \times \text{समवृत्तव्यासार्धम्}}{\text{दिगंशकोट्युत्क्रमज्या}}$$

१ फलम् + २ फलम् = दिग्वलयव्यासः। योगार्धे च दिग्वलयकेन्द्रम्।

यन्त्रराजरचनाप्रकारः ।

प्र. ९ प. १. अत्रोपपत्तिरिति । क्षितिजकेन्द्रव्यासानयने थोपपत्तिस्तथैवय समवृत्तस्य दिग्वलयानां च केन्द्रानयने व्यासानयने च । एतावानेत्र विशेषो यदत्र खस्वस्तिकं पूर्वदिक्स्थानेऽधःस्वस्तिकं च पश्चिमदिक्स्थाने, प्रकल्पनीयम् । एवं समवृत्तीयपूर्वस्वस्तिकं दक्षिणदिक्स्थानमथापरस्वस्तिकमुत्तरदिक्स्थानं ज्ञेयम् । यथोन्नतवलयानि संख्यया नवतिमितानि तथैवैतानि दिग्वलयानि भुजवृत्ताभिधानि प्रत्यंशं क्षितिजे भवन्ति । खस्वस्तिकाधःस्वस्तिकयोः प्रोतानि दिग्वलयानीति परिभाषा । केन्द्राणि चैतेषां समवृत्तीयपूर्वापररेखायां पूर्वतः पश्चिमतश्च भवन्तीति ज्ञेयम् । क्षेत्ररचना च क्षितिजवज्ज्ञेया ।

प्र. ९ प. ९ अथ होरानिष्पादनप्रकार इति । होरा नाम सार्धद्विघटिकामितः कालः । होराया द्वैविध्यं दिनमानरात्रिमानयोर्द्वादशद्वादशविभागानां समत्वेन विषमत्वेन च । त्रिंशद्घटिकात्मकदिनस्य समाना द्वादश विभागाः समा होरा । चरसंस्कृतौ दिनमानरात्रिमानयोर्विषमा विभागा विषमा होरेति निष्कर्षः ।

निष्पादनप्रकारः ।

क्षितिजादधःप्रदेशे मकरकर्कनाडीवृत्तानां समाना द्वादश विभागाः कार्याः । ततो मकरवृत्तीयप्रथमचिह्ने कर्कटकस्यैकाग्रं धृत्वोभयतो वृत्तखण्डद्वयमङ्कनीयम् । पुनः कर्कटकस्यैकाग्रं विषुववृत्तीयप्रथमचिह्ने धृत्वा तेनैव परिमाणेनैकं वृत्तं कार्यम् । एवमेव कर्कवृत्तीयप्रथमचिह्ने कर्कटकस्यैकाग्रं धृत्वा तेनैव परिमाणेनैकं वृत्तमन्यत् कार्यम् । एवं विषुववृत्तीयप्रथमचिह्नात्तथा कर्कवृत्तीयप्रथमचिह्नात् कृते वृत्ते मकरवृत्तीयप्रथमचिह्नात्कृतं वृत्तं यत्र यत्र स्पृशतस्तत्र तत्र चिह्नं कार्यम् । एवं चिह्नचतुष्टयं भवति । तेषु द्वयोर्द्वयोश्चिह्नयोः संलग्ना रेखा स्वमार्गे वर्धमाना यत्र संपातं करिष्यन्ति तत्र तत्र केन्द्रं कृत्वा मकरादिवृत्तत्रये कृतानां चिह्नानामुपरिगतानि वृत्तानि कार्याणि तानि होरावलयानि भवन्ति । एवमेव समहोरावलयनिष्पादनं विधेयम् । तत्र मकरादिवृत्तानां समना द्वादश विभागाः पूर्वापररेखाया अधः कार्याः । ते समहोराणां भवन्ति ।

प्र. प. भपत्ररचनाप्रकार इति । यस्मिन् पत्रे मकरादिवृत्तत्रयादीनि वृत्तानि कृतानि तदक्षपत्रं नाम । अक्षपत्राद्दले द्विगुणमन्यत् पत्रं गृहीत्वा तत्रापि मकरादिवृत्तत्रयं कृत्वा मकरवृत्तं भांशैरङ्कयित्वा मकरवृत्तीयपश्चिमकचिह्नात्प्रत्यंशसंबन्धिलङ्कोदयांशान् विगेणय्य चिह्नानि कार्याणि । ततो मकरवृत्तीयदक्षिणदिक्चिह्नात्कर्कवृत्तीयोदक्चिह्नावधि यद् याम्योत्तररेखाखण्डं तस्यार्धे केन्द्रं कृत्वा मकरवृत्तीयदक्षिणचिह्नमथ कर्कवृत्तीयोदक्चिह्नं च स्पृशदेकं वृत्तं करणीयम् । तत् क्रान्तिवृत्तं भवति । यन्त्रराजस्य केन्द्रे (ध्रुवस्थाने) सूत्रस्यैकाग्रं धृत्वा पूर्वकृतलङ्कोदयांशानामुपरिगतं सूत्रं यत्र यत्र क्रान्तिवृत्ते संपतति तत्र तत्र चिह्नानि कार्याणि । त एव क्रान्तिवृत्तस्य भागा भवन्ति । अर्थात् क्रान्तिवृत्तेऽपि लङ्कोदयांशाः समङ्किता भवन्ति ।

पृ. प. अथ गणितेन क्रान्तिवृत्तव्यासानयनमिति । नाडीवृत्तव्यासार्धवर्गो मकरव्यासार्धेन भाज्यः । फलं मकरवृत्तव्यासार्धे योज्यं तदेव क्रान्तिवृत्तव्यासार्धमानं भवति । तदर्धे च केन्द्रं भवति ।

अत्रोपपत्तिः कर्काहोरात्रव्यासार्धवद् ज्ञेया ।

अथ भपत्रे नक्षत्रस्थापनमिति ।

नक्षत्राणां शराः स्थिराः, भोगाश्चायनांशवशादस्थिराः । श्रीमद्भास्कराचार्यैः—

इत्यभावेऽयनांशानां कृतदृक्कर्मका ध्रुवाः ।
अयनांशवशादेषामन्याद्दक्त्वं च जायते ॥

सिद्धान्तशिरोमणौ नक्षत्रध्रुवकलेखनप्रसङ्ग उक्तम् ।

अथैते भोगा आयनदृक्कर्मसंस्कृताः कार्याः । आयनदृक्कर्मानयनार्थमयमनुपातः—

$$\text{आयनवलनज्या} = \frac{\text{परमक्रान्तिज्या} \times \text{सायनभोगकोटिज्या}}{\text{क्रान्तिकोटिज्या}}$$

अत्र भास्करीयं सूत्रम्—

युतायनांशोडुपकोटिशिञ्जिनी जिनांशमौर्व्या गुणिता विभाजिता ।
द्युजीवया लब्धफलस्य कार्मुकं भवेच्छशाङ्कायनदिक्कमायनम् ॥

आयनदृक्कर्मसंस्कारः किमिति करणीय इत्यत्रायं विचारो यदा क्रान्तिवृत्तीयस्तत्तन्नक्षत्रीयभोगः क्षितिजे समायाति न तदा तन्नक्षत्रं समुदितं भवति । नक्षत्रस्य शरवशात्तामनमुन्नामनं च अत एव शराधीनं तत्तन्नक्षत्रीयं स्थानमायनदृक्कर्मवशादेव क्षितिजे समायातीति ।

आयनदृक्कर्मानयनार्थं भास्करीयं सूत्रम्—

आयनं वलनमस्फुटेषुणा संगुणं द्युगुणभाजितं हृतम् ।
पूर्णपूर्णधृतिभिर्ग्रहाश्रितव्यक्षभोदयहृदायनाः कलाः ॥

भपत्ररचनायां क्रान्तिवृत्तीयकदम्बसंबन्धिभोगाः पूर्वं ध्रुवसूत्रीयाः करणीयाः । शरवशाच्च तेषां क्रान्तयश्च स्फुटाः करणीयाः । तदनन्तरं क्रान्तिवृत्तीया नक्षत्रभोगाः क्रान्तिवृत्ते समङ्क्याः । ततश्च ध्रुवस्थाने सूत्रस्यैकाग्रं स्थिरीकृत्य तत्तन्नक्षत्रीयभोगोपरि नीयमानं सूत्रं तन्नक्षत्रसंबन्धिस्वीयाहोरात्रवृत्तं (विषुववृत्तसमानान्तरं) स्पृशति तत्र तत्र तस्य तस्य नक्षत्रस्य चक्षुस्थानं ज्ञेयम् । अथवा षट्षष्टिमिताक्षांशसंबन्धीन्युन्नतवलयानि दिग्वलयानि च कार्याणि । तथा कृते तत्रत्यं क्षितिजं क्रान्तिवृत्तं जायते । तस्मिन् क्रान्तिवृत्ते तत्तन्नक्षत्रीया दृक्कर्मसंस्कृता भोगाः समङ्कनीयाः । शरांशाश्चोत्तरा दक्षिणा वा तत्राङ्कनीयाः । शराग्रे तस्य तस्य नक्षत्रस्य चक्षुर्ज्ञेयः । चक्षुर्व्यतिरिक्तं भपत्रपत्रं संछेद्यमेवं भपत्ररचनं संजायते । इति यन्त्रराजघटनाप्रकारः ।

यन्त्रराजवेधप्रकारश्चैतद्ग्रन्थीयटीकानिरपेक्षः सुगम्यः ।

॥ इति केदारनाथज्योतिर्वित्संकलिता यन्त्रराजप्रभा समाप्ता ॥